चन्दामामा
अप्रैल १९८२

It is the dilemma every rich youth faces with–To opt for a Pseudo - Modern life or true and traditional style.
श्रीमान श्रीमती
बी. नागी रेड्डी प्रस्तुत करते हैं, एक नयी महान फिल्म
Director : VIJAYA REDDY
Story : K. S. RAO
Dialogue : RAJ BALDEV RAJ
Lyrics : MAJROOH SULTANPURI
Music : RAJESH ROSHAN
Camera : P. L. RAI
Art : S. KRISHNA RAO
Editing : K. BALU
Associate Director : VIJAYAKUMAR RAICHURA
Stills : R. NAGARAJA RAO
Production Controller : M. VEERA RAGHAVULU
EASTMANCOLOR by PRASAD/VIJAYA COLOR LAB
Frame to Frame a Family Film
विजय प्रॉडक्शन्स - चित्र
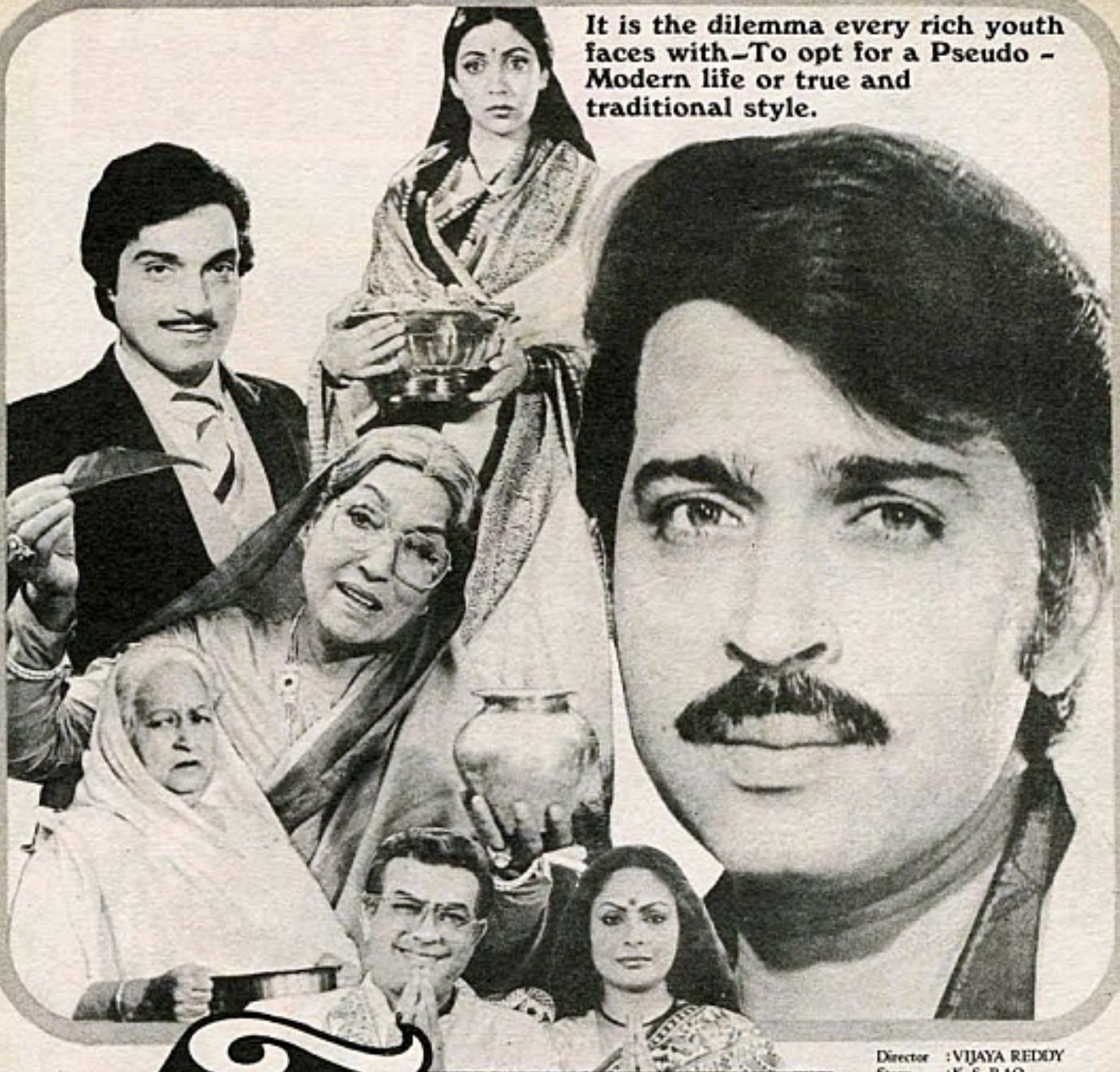
चन्दामामा-कैमल रंग प्रतियोगिता

निःशुल्क प्रवेश

इनाम जीतिए

कैमल-पहला इनाम १५ रु.
कैमल-दूसरा इनाम १० रु.
कैमल-तीसरा इनाम ५ रु.
कैमल-आश्वासन इनाम ५
कैमल-सर्टिफिकेट १०
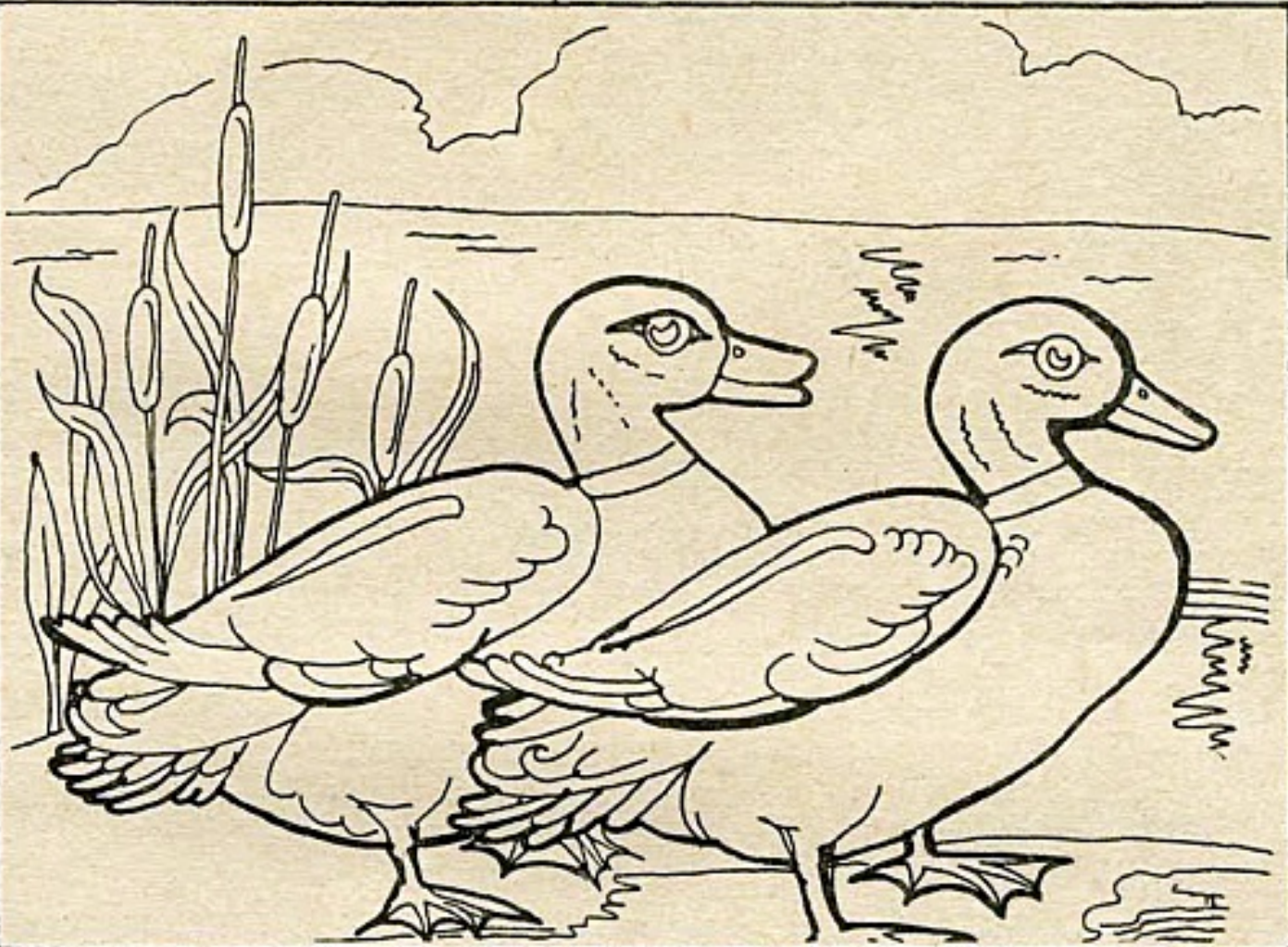
केवल १२ वर्ष तक के विद्यार्थी प्रतियोगितामें शामिल हो सकते हैं। उपर दिये गये चित्रमें अपने मनचाहें कैमल रंग भर दिजिए। अपने रंगीन प्रवेश-पत्र नीचे दिये गए पते पर भेजिए P.B. No. 9928, COLABA, Bombay-400 005.
परिणाम का निर्णय अन्तिम निर्णय होगा। और कोई भी पत्रव्यवहार, नहीं किया जाएगा।

Name.. Age..................
Address...

कृपया अपना नाम और पता अंग्रेज़ी में लिखिए।

बिन्दुओं रेखाके साथ काटिये

CONTEST NO 24

कृपया ध्यान रखिए कि पूरा चित्र पेंट किया जाये।
चित्र भेजने की अंतिम तारीख: 30—4—1982

Vision

चन्दामामा

अप्रैल 1982

विषय-सूची

एक प्रति : १-७५

वार्षिक चन्दा : २१-००

चन्दामामा

संस्थापक : 'चक्रपाणी'

संचालक : नागिरेड्डी

ईमानदार व्यक्ति दगेबाजों की नज़र में भोले-भाले दीखते हैं। ऐसे एक व्यक्ति को सताने का हर तरह से प्रयत्न करके आखिर अपमानित होनेवाले एक दगेबाज का परिचय हमें "कचहरी भैंसे" नामक कहानी के द्वारा मिल जाता है।

अमर वाणी

क्वचिद्‌दुष्टः क्वचित्तुष्ट, दुष्टस्तुष्टः क्वचित् क्वचित् ।
अव्यवस्थित चित्तानां, प्रसादोपि भयंकरः ॥

[चंचल बुद्धिवाला एक क्षण में संतोष और दूसरे पल में असंतोष प्रदर्शित करता है। इसलिए ऐसे व्यक्ति का कृपा पात्र बनना भी ख़तरे से खाली नहीं है।]

वर्ष : ३४ | अप्रैल १९८२ | अंक : ८

एक प्रति : १-७५ :: वार्षिक चन्दा : २१-००
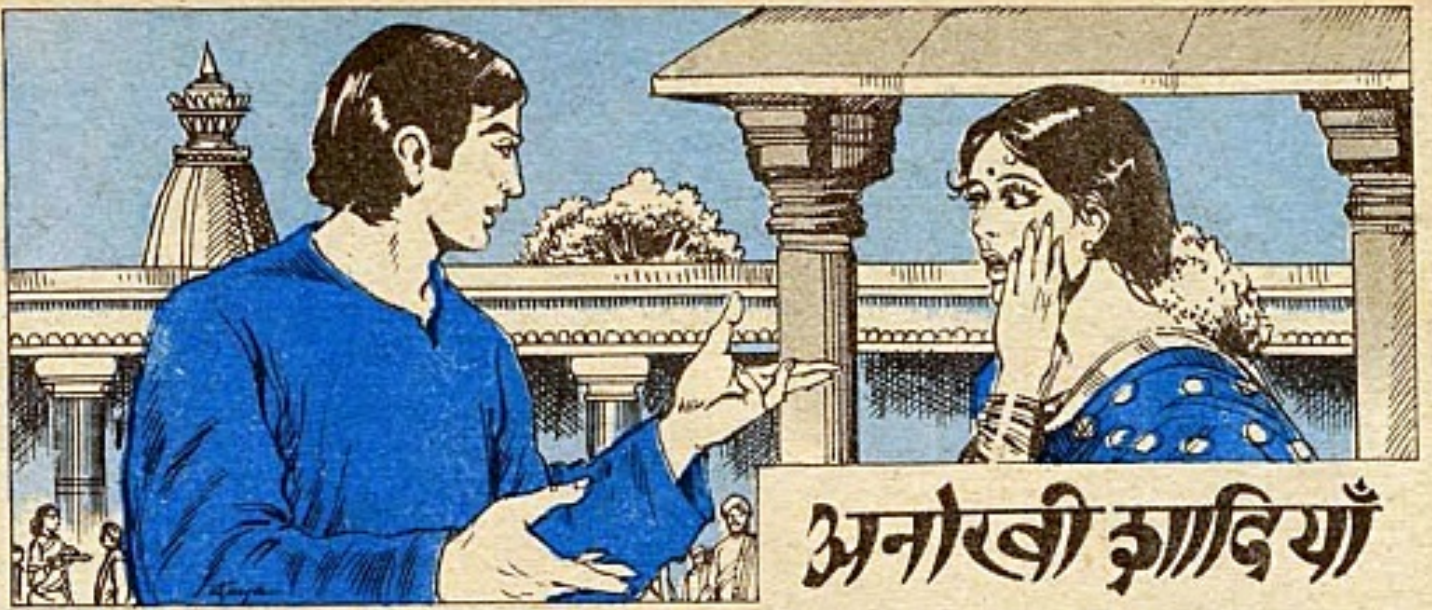
रविचन्द्र अपनी माँ के साथ मंदिर में गया। भगवान के दर्शन करके बाहर आया। उसकी माँ मंदिर में अर्चना कराने में लगी थी।

इतने में एक लड़की रविचन्द्र के पास पहुँची और बोली—"क्या तुम नये जूतों की चोरी करने आये हो? मैं ने तो तुम्हें कभी इस मंदिर के पास नहीं देखा है?"

ये बातें सुन रविचन्द्र अवाक रह गया; इस पर वह लड़की फिर बोली—"घबराते हो क्यों? तुम्हारे बाबूजी ने मुझ से कहा था कि रघुप्रसाद कहीं दिखाई दे तो तुरंत उसे घर भिजवा दे।"

रविचन्द्र ने भांप लिया कि वह लड़की उसे रघुप्रसाद समझकर ऐसी बातें कर रही है, तब बोला—"मेरे बाबूजी तो कभी के मर गये है? मेरा नाम रघुप्रसाद नहीं, तुम मुझे गलत समझ रही हो।"

लड़की आश्चर्य में आ गई और बोली—"क्या बोले? तुम रघुप्रसाद नहीं हो? मैं अपनी आँखों पर यक़ीन नहीं कर पा रही हूँ; तुम हूबहू रघुप्रसाद जैसे लगते हो।"

जब रविचन्द्र को मालूम हुआ कि उस की आकृति वाला कोई दूसरा युवक भी है, तब उसके मन में जिज्ञासा पैदा हुई। इसके बाद वह लड़की रविचन्द्र को अपने घर ले गई। एक कमरे में बिठाकर बोली—"तुम यहीं पर बैठे रहो, मैं अभी रघुप्रसाद को बुला लाती हूँ।" यों कहते उसने कमरे के किवाड़ बन्द किये।

थोड़ी देर बाद उस युवती ने खिड़की में से एक कागज और क़लम देकर कहा—"इस वक़्त तुम मेरे क़ैदी हो। मेरे कहे मुताबिक़ इस कागज़ पर लिख दो। ऐसी हालत में तुम्हारी माँ को किसी तरह का खतरा पैदा न होगा!"

दीपक वर्मा

रविचन्द्र ने पूछा–"तुम कौन हो? तुमने मुझे इस कमरे में क्यों क़ैद किया?"

"तुम्हारे सवालों का जवाब इस वक़्त में नहीं दे सकती। तुम चुपचाप मेरे कहे मुताबिक़ लिख दो!" युवती बोली।

रविचन्द्र ने उस युवती के कहे मुताबिक़ अपनी माँ के नाम लिखा कि यदि उसे सुरक्षित घर लौटना है तो इस युवती के हाथ में तुम्हारे सारे गहने दे दो! इस पर वह युवती वह कागज़ लेकर चली गई।

वह युवती जब मंदिर में पहुँची, तब रविचन्द्र की माँ अपने बेटे की खोज में चारों ओर नज़र दौड़ा रही थी। युवती ने रविचन्द्र की माँ के पास पहुँच कर वह कागज़ उसके हाथ में दिया।

चिट्ठी पढ़ने पर रविचन्द्र की माँ का चेहरा सफ़ेद पड़ गया। वह कांपते स्वर में बोली–"मेरे बेटे ने सारे गहने तुम्हारे हाथ सौंपने के लिए लिखा है। लेकिन मेरे गहने घर में हैं, चलो मेरे घर, सारे गहने तुम्हें दे दूंगी, लेकिन मेरी एक शर्त है, मेरे बेटे की कोई हानि मत पहुँचा दो।"

इसके बाद रविचन्द्र की माँ उस युवती को अपने घर ले गई, तिजोरी वाला कमरा दिखा कर बोली–"तुम जो गहने चाहती हो, ले जाओ।" यों कहकर वह किवाड़ के पास पहुँची।

युवती ने तिजोरी में से सारे गहने निकाल कर पोटली बांध ली, इसके बाद देखती क्या है, कमरे के किवाड़ बंद हैं। रविचन्द्र की माँ खिड़की के बाहर खड़ी हो कर बोली–"सुनो, मेरा बेटा जब इस घर में पहुँचेगा, तभी तुम इस देहली को पार कर जा सकोगी, पर अपने घर नहीं, सीधे कारागार में जाओगी। अब मैं रसोई बनाने जाती हूँ।"

तब तक अंधेरा फैल चुका था। रविचन्द्र ने दिया जलाया। दो-चार मिनट बाद पड़ोसी घर से एक युवती आ पहुँची, कमरे के किवाड़ खोलते हुए बोली–"सरला, मैं तुम्हारे लिए एक ख़ुश ख़बरी

लाई हूँ। मेरी होने वाली सास बिलकुल बदल गई है।" इसके बाद कमरे में रविचन्द्र को देख वह चकित रह गई।

"आप कौन हैं? हमारी सरला कहाँ?" उस युवती ने पूछा।

"तुम्हारी सरला मुझे इस कमरे में बंदी बनाकर मेरी माँ के गहने लूटने के लिए चली गई है।" रविचन्द्र ने मजाक़ किया। युवती आँखें विस्फारित करके बोली–"उफ़! कैसी भूल हो गई है! सरला में आवेश ज्यादा है, विवेकशीलता बिलकुल नहीं है।"

"इस गुट में तुम दोनों शामिल हो? या इस में कुछ और लोगों का भी हिस्सा है?" रविचन्द्र ने पूछा।

"हम चोर नहीं; मेरा नाम अनिता है। असली बात तुम जानोगे तो सरला को गलत नहीं समझोगे!" यों अनिता ने रवि को सारी बातें सुनाईं।

सरला और अनिता बचपन से एक ही मकान के अगल-बगल के हिस्सों में रहते पली, बढ़ीं। बचपन से ही सरला तेज स्वभाव की थी। अनिता का पिता एक वैद्य था। अनिता ने अपने पिता से इलाज करने की विद्या सीखी। पिता के मरने के बाद खुद मरीज़ों का इलाज करते अपनी माँ का पोषण करने लगी।

इधर चार दिन पहले सरला अपने माँ-बाप के साथ पड़ोसी गाँव के रिश्तेदारों के घर एक शादी में गई। उस वक़्त अनिता की सगाई हुई। दूल्हा पहले से ही अनिता का परिचित था। वह रोज अपनी माँ को साथ लेकर मंदिर जाया करता था। अनिता भी मंदिर के अहाते के बगीचे में दवाइयों के काम देनेवाली जड़ी-बूटियों की खोज करने अकसर मंदिर के पास जाया करती थी। वहाँ पर अनिता को देख उस युवक ने उसके साथ शादी करने का निश्चय किया। मगर अनिता ने यही पहली बार उसे देखा था।

दूल्हे की माँ गहनों पर जान देनेवाली थी। उसने अनिता की माँ से साफ़ कह

दिया–"कन्या के साथ दस तोले सोने के गहने न दे तो यह शादी नहीं हो सकती ।"

सरला ने शादी से लौटकर अनिता के मुँह से सारी बातें सुनीं और आवेश में आकर बोली–"सोने के मोह में पड़कर क्या लक्ष्मी जैसी बहू से वह वंचित होना चाहती है? वह औरत रोज अपने बेटे को साथ ले मंदिर में आती है। आज मैं उसे अच्छा सबक़ सिखाऊँगी!"

"सरला, तुम्हारा पुण्य होगा! तुम इस बात को बिलकुल भूल जाओ!" अनिता ने गिड़गिड़ाकर सरला से कहा।

इस घटना के दिन शाम को अनिता एक मरीज को दवा देकर लौट रही थी, तब रास्ते में दूल्हे से उसकी मुलाक़ात हुई। उसने कहा–"अनिता, मेरी माँ पेट के दर्द से परेशान है। तुम जल्दी आकर उसका इलाज करो।"

घर पहुँचने के बाद दूल्हे ने अनिता को दर्वाजे पर रोका और वह अपनी माँ के पास जाकर बोला–"माँ, वक़्त पर अनिता को छोड़ कोई भी वैद्य घर पर नहीं है।"

"चाहे कोई भी हो, जल्दी बुला लाओ। दर्द के मारे मेरी जान चली जा रही है।" दूल्हे की माँ कराह उठी।

"माँ, अनिता ने हमारे घर आने से साफ़ इनकार किया है। वह कहती थी कि तुम्हारी माँ को सोना प्राणों से बढ़कर है, थोड़ा वही सोना निगल कर अपने प्राण बचाने को कह दो!" यों दूल्हा अपनी माँ से झूठ बोला।
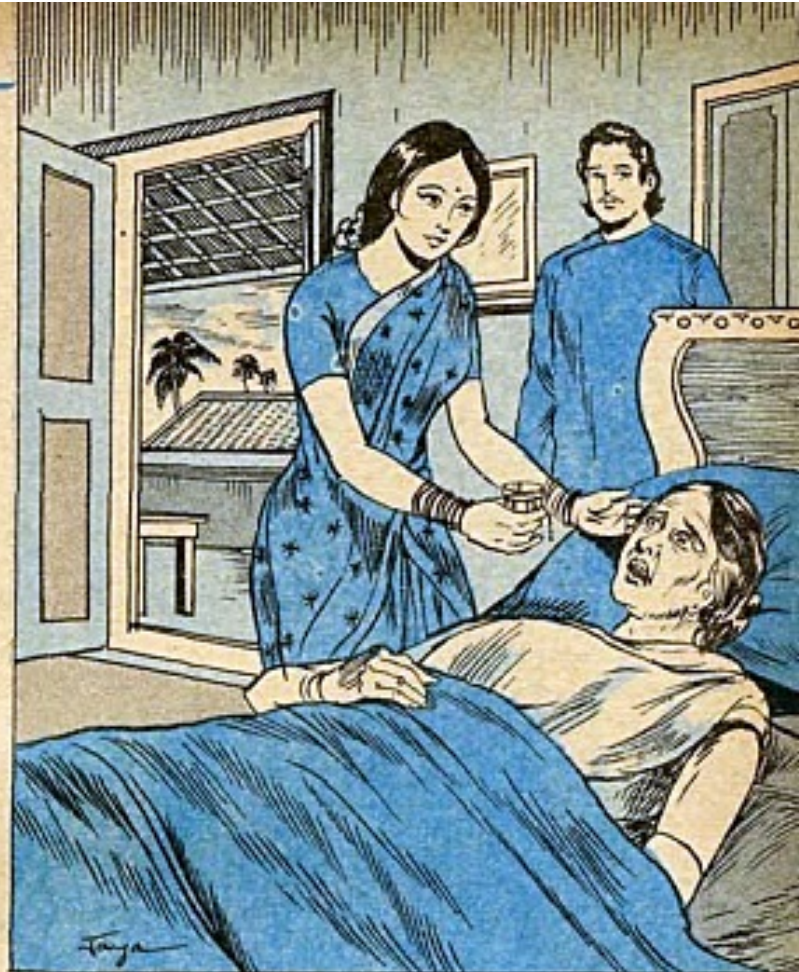
"बेटा, मेरी अक़्ल चरने गई थी। इसीलिए मैंने अपनी बहू से ज्यादा सोने को माना। उसे यह बताकर बुला लाओ कि मैंने अपनी इस गलती के लिए उससे माफी माँग ली है।"

ये बातें सुनने के बाद अनिता अपनी होनेवाली सास के पास पहुची, बीमारी के बारे में दो-चार सवाल पूछकर दवा दी। कुछ ही मिनटों में दूल्हे की माँ का पेट दर्द जाता रहा। तब वह औरत बड़े प्यार से अनिता से बोली–"बेटी, तुम्हारी दवा ने

संजीवनी जैसे काम दिया। पिछली बातों को भूल जाओ। कल ही तुम्हारे घर मुहुर्त निश्चय करने के लिए आ जायेंगे।"

अनिता ने यह सारा वृत्तांत रविचन्द्र को सुनाकर कहा—"तुम माँ-बेटे को देख सरला ने सोचा कि तुम्हीं लोग मेरी सगाई में आये हुए हो। उसके अन्दर सचमुच परोपकार की वृत्ति को छोड़ उसका अपना कोई स्वार्थ नही है!"

इसके बाद रविचन्द्र अनिता को साथ लेकर जब अपने घर पहुँचा तो देखता क्या है? सरला कमरे के बीच उदास बैठी हुई है। अनिता ने सरला को बताया कि उसने आवेश में आकर कैसी भूल की। सरला ने रविचन्द्र और उसकी माँ से अपनी इस भूल के लिए क्षमा माँग ली।

रविचन्द्र ने मुस्कुराते हुए कहा—"मेरी इच्छा है कि मेरी होनेवाली पत्नी भी साहसी और बुद्धिमति भी हो। तुम्हें अगर कोई आपत्ति न हो तो मैं तुम्हारे साथ शादी करना चाहता हूँ।"

"मेरे भीतर साहस है, जल्दबाजी भी, पर आप के अन्दर ये दोनों गुण नहीं हैं। किवाड़ बंद कर मेरे कहे मुताबिक़ चिट्ठी लिखकर देने को कहा तो आप ने चिट्ठी लिखकर दी। क्योंकि आप कायर हैं। ऐसी हालत में मैं आपके साथ शादी कैसे कर सकती हूँ?" सरला ने कहा।

"तुम्हारे व्यवहार से मैं समझ गया कि तुम चोरी का अनुभव नहीं रखती हो! पर तुम्हारा साथ देनेवाले किस तरह के चोर हैं, इसका पता लगाने के लिए मैंने तुम्हारे कहे मुताबिक़ चिट्ठी लिखकर दी। जानती हो, मैं एक दारोगा हूँ।" रविचन्द्र ने कहा।

"ओह, जैसे हम बचपन से सोचती आ रही थीं कि हम दोनों की शादी एक ही मुहूर्त में हो, हमारी शादी उसी लग्न में होनेवाली है!" यों कहते अनिता हंस पड़ी। सरला मुस्कुराते हुए सर झुकाये खड़ी-खड़ी तिरछी नज़र से रविचन्द्र की ओर ताकती रह गई!

[५]

[मंदरदेव का शिवदत्त के साथ परिचय हुआ। उस वक्त शिवदत्त उसे कुंडलिनी द्वीप के राजा का मनोरंजन के कार्यक्रमों में डूब जाना, देश में अराजकता का फैलना, आख़िर दुश्मन के द्वारा राजधानी नगर को घेर लेना, उस हालत में सेनापति का पद नरवाहन मिश्र के हाथ सौंपना आदि सुनाने लगा। बाद...]

शिवदत्त की बातें मंदरदेव बड़े ध्यान से सुनने लगा। पल-पल में उसका आश्चर्य बढ़ता गया। उसने इस बात की ओर बिलकुल ध्यान न दिया कि समुद्र पर उस अंधेरे में नौकाएँ किधर बढ़ी चली जा रही हैं। अंत में शिवदत्त की बातों पर दखल देते हुए मंदरदेव बोला–"शिवदत्त, समरसेन के द्वारा सेनापति का पद उस दुष्ट नरवाहन मिश्र के हाथ सौंपते देख आपने उन्हें क्यों नहीं रोका? आप ही सेनापति का पद स्वीकार करते तो क्या ही अच्छा होता?"

ये बातें सुन शिवदत्त हंसकर बोला–"मंदरदेव, उस समय की हालत कुछ ऐसी थी कि मेरा उसमें दखल देना नामुमक़िन था। मेरा स्वयं यह मांग करना कि मुझे सेनापति का पद दीजिए, क्या उचित होगा? पर साथ ही सेनापति का पद एक

दुष्ट के हाथ में जाने देना भी हितकर नहीं है! इसलिए मैं कोई और उपाय सोचने में निमग्न हो गया। मेरे मन को भांपने की कोशिश करते हुए समरसेन ने पूछा–"शिवदत्त, सोचते क्या हो? तुम कुछ कहना चाहते हो, तो साफ़-साफ़ बतलाते क्यों नहीं?"

मौक़ा मिलते ही मैंने उनसे कहा–"समरसेन, मेरी दृष्टि में इस हालत में आप ही के द्वारा सेनापति का पद संभाल लेना ज़्यादा उचित होगा। दुश्मन ने हमारे पास जो संदेशा भेजा है, उसको देखते हुए उसकी ताक़त पर शंका नहीं की जा सकती, दुर्भाग्यवश अगर हमारी सेना दुश्मन के हाथों में एक बार मार खाएगी तो वह घटना कुछ और शत्रुओं को हम पर हमला करने के लिए कारणभूत बन जाएगी। इसलिए आप स्वयं सेना का नेतृत्व कीजिए। यही आप से मेरा निवेदन है।"

समरसेन पल भर सोचते रहे, इस बीच वे किसी निर्णय पर पहुँचे। फिर सिर हिलाकर बोले–"अच्छी बात है, तुम चिंता न करो, ऐसा ही करूँगा।"

इस बीच वहाँ पर नरवाहन मिश्र आ धमका। उसे देखते ही समरसेन बोले–"नरवाहन, मैं तुम्हारे वास्ते ख़बर भेजना चाहता था। तुम अभी जाकर सेना का संगठन करो। हर हालत में तुम्हें एक घंटे के अन्दर कम से कम दो हजार सैनिकों को इकठ्ठा करना होगा। सूर्यास्त के

अन्दर हमें हमारे शत्रुओं का पूर्ण रूप से संहार करना होगा।"

नरवाहन मिश्र वहाँ से चलते वक़्त मेरी ओर नज़र दौड़ाकर मंद-मंद मुस्कुराया। उस हंसी में निश्चय ही जहर भरा था। मगर मैं उस वक़्त समझ न पाया कि उसके अन्दर कितना कालकूट विष भरा हुआ था।

इसके बाद समरसेन मेरी तरफ़ मुड़कर बोले–"शिवदत्त, तुम भी जल्दी अपने अनुचरों को तैयार करो। कम से कम इस बहाने तलवारों की जंग तो छुड़ा सकते हैं।"

मैंने अपने अनुचरों में से पच्चीस प्रबल योद्धाओं को तैयार किया। महा सेनापति समरसेन के नेतृत्व में युद्ध करके काफी समय हो चला था। पुनः ऐसे मौक़े को पाकर मैं बड़ा खुश हुआ।

एक घंटा बीत गया। यह सोचकर मैं तथा समरसेन बड़ी उत्सुकता के साथ इंतजार करते रहे कि नरवाहन मिश्र सेना का संगठन करके यह खबर देने के लिए हमारे पास लौट आयेगा।

घंटे भर बाद नरवाहन मिश्र तो लौट आया, मगर उसकी आकृति देख हम दोनों आश्चर्य में आ गये।

उसके म्यान में तलवार न थी। उसकी पोशाकें फटी हुई थीं। उसके चेहरे पर जहाँ-तहाँ छोटे-छोटे घाव बने थे, जिनमें से खून बह रहा था। वह एक दम डरा हुआ सा लग रहा था।

"नरवाहन, बात क्या है? यह तुम्हारी आकृति कैसी?" समरसेन ने बड़ी आतुरता के साथ पूछा।

नरवाहन ने जवाब देने की कोशिश की, मगर उसका कंठ भर्राया हुआ था। वह घबराये हुए स्वर में बोला—"महा सेनापति जी, हालत बड़ी नाज़ुक है। हमें थोड़ी देर के लिए भी सही, यहाँ पर टिकना खतरे से खाली नहीं है, इसलिए हमें तुरंत किसी सुरक्षित प्रदेश के लिए भाग जाना उचित होगा।"

ये बातें सुनते ही समरसेन क्रुद्ध होकर उठ खड़े हुए। उनके भीतर ऐसा क्रोध और आवेश मैंने आज तक कभी न देखा था।

समरसेन ने गरजकर कहा—"यह तुम क्या कहते हो? मेरे राज्य में मुझे कहीं सुरक्षित प्रदेश में जाना होगा? इस कुंडलिनी द्वीप की प्रत्येक इंच जमीन मेरी रक्षा कर सकती है! तुम कहीं पागल तो नहीं हुए हो?"

इस पर नरवाहन मिश्र अपादमस्तक कांप उठा। समरसेन पुनः कुछ बोलने को हुए, मगर इस बीच क़िले के प्रवेश द्वार की ओर से भयंकर कोलाहल के साथ नारे सुनाई दिये। हम लोग इस तरह कांप उठे, जैसे तूफान के झोंकों से महा वृक्ष भी हिल उठते हैं।

"ये कैसे नारे हैं?" समरसेन ने नरवाहन मिश्र की ओर देखते कठोर स्वर में पूछा।

"समरसेन! मैं यही भयंकर समाचार आप को सुनाने जा रहा था। हमारे सैनिक जनता के साथ मिल गये हैं। वे लोग ये नारे लगाते कि "राजा को गद्दी से उतारो।" गलियों में जुलूस निकाल रहे हैं। मैंने हमारे सैनिकों का संगठन करने की भरसक कोशिश की। इसके बदले में उन लोगों ने मुझे यह पुरस्कार दिया है। मैं कुंडलिनी देवी की कृपा से अपनी जान बचाकर आपके पास किसी तरह भाग आया।" नरवाहन

मिश्र ने उत्तर दिया। ये बातें सुनते ही समरसेन इस तरह लुढ़क पड़े, मानो उनके सिर पर बिजली गिरी हो। जिन लोगों के वास्ते अपने प्राणों का मोह त्यागकर समरसेन ने ये सारी यातनाएँ झेलीं, आखिर उन्हीं लोगों ने विपदा के वक़्त उनके नेतृत्व का तिरस्कार किया है। इससे समरसेन का दिल बैठ गया। बेचारे वे यह नहीं जानते थे कि इस बीच राज्य के अन्दर कैसे-कैसे परिणाम हुए और उनमें नर वाहन मिश्र का कैसा हाथ था।

"समरसेन, आप हिम्मत न हारियेगा! किसी तरह इस खतरे से बचने का आप तत्काल कोई उपाय सोचिये।" मैंने उन्हें सुझाया।

समरसेन ने लंबी साँस लेकर कहा–"शिवदत्त, यह मत सोचो कि मैं हिम्मत हार रहा हूँ। यह सोचने पर मेरा दिल खौल रहा है कि आखिर जनता मेरे प्रति कैसी कृतघ्न हो गई है! इससे बढ़कर कुछ और नहीं है।"

मेरी समझ में न आया कि किन शब्दों में मैं समरसेन को सांत्वना दूँ। मैंने नरवाहन की ओर देखा। वह एक दम निश्चल खड़ा हुआ था। उसी क्षण क़िले के फाटक की ओर से भयंकर ध्वनि सुनाई दी। इतने में एक द्वारपाल हमारे पास दौड़ते आ पहुँचा।

हम लोग उससे पूछना ही चाहते थे कि आखिर बात क्या है? तभी वह बोला–"महा सेनापतिजी, ख़तरा बढ़ता जा रहा है। जनता क़िले के दर्वाजों को तोड़ रही है।"

समरसेन पल भर के लिए सर झुकाकर खड़े रहें। मुझे शक हुआ कि समरसेन ने आखिर द्वारपाल की बातें सुनी हैं या नहीं? मैं कुछ कहने को हुआ, तभी उन्होंने सिर उठाकर मेरी तरफ़ देखा। उनकी दृष्टि में जो अपार पीड़ा थी, उसे मैं भली भांति समझ गया।

"मृगशाला के अधिकारी को तुरंत यहाँ पर बुला लाओ।" मैंने द्वारपाल को आदेश दिया।

थोडी देर में मृगशाला का अधिकारी आ पहुँचा। मैंने उसे आज्ञा दे दी– "तुम्हारे अधीन में जो कुछ खूँख्वार जानवर हैं, उन्हें कटघरों से मुक्त कर दो। मगर इस बात का ख़्याल रखो कि वे महल के आंगन और प्रधान फाटक के पास ही रहें। ज़रूरत पड़ने पर उनको फिर से कटघरों में पहुँचाने के लिए तुम्हारे अधीन में जो नौकर हैं, उन्हें तैयार रखो।"

यह आदेश पाते ही मृगशाला के अधिकारी का चेहरा सफ़ेद पड़ गया। उसने समरसेन की ओर प्रश्नार्थक दृष्टि से देखा। समरसेन ने खीझ भरी दृष्टि से सर हिलाकर कहा–"शिवदत्त के सारे आदेशों को मेरे आदेश मानकर पालन करो।"

"म...मगर सेनापतिजी, एक बार हमने उन खूँख्वार जानवरों को कठघरों से मुक्त किया तो वे बाहर रहने वाली जनता पर..." मृगशाला का अधिकारी कुछ कहने को हुआ। इस पर मेरे तन-बदन में आग लगी और मैंने क्रोध में आकर कहा– "इससे तुम्हारा कोई मतलब नहीं। जनता को यह बात पहले ही समझ लेना जरूरी है कि क़िले का दर्वाजा तोड़ने पर क्या होने वाला है? तुम देरी न करो, तत्काल मेरी आज्ञा का पालन करो।"

इस पर मृगशाला का अधिकारी चला गया, तब मैंने नरवाहन मिश्र की ओर देखा। वह दांत भींचकर मेरी ओर चुपके से देख रहा था। आखिर इस दुष्ट की चाल क्या है? इन सैनिकों और जनता के विद्रोह के पीछे इसका हाथ कहाँ तक है? इन सवालों का जवाब उस समय मुझे नहीं मिला।

आध घड़ी के अंदर हमारे कान के पर्दों को फोड़ने वाले सिंहों के गर्जन और हाथियों के भयंकर चिघाड़ सुनाई देने लगे। क़िले का सारा आंगन खूँख्वार जानवरों के

CHITRA
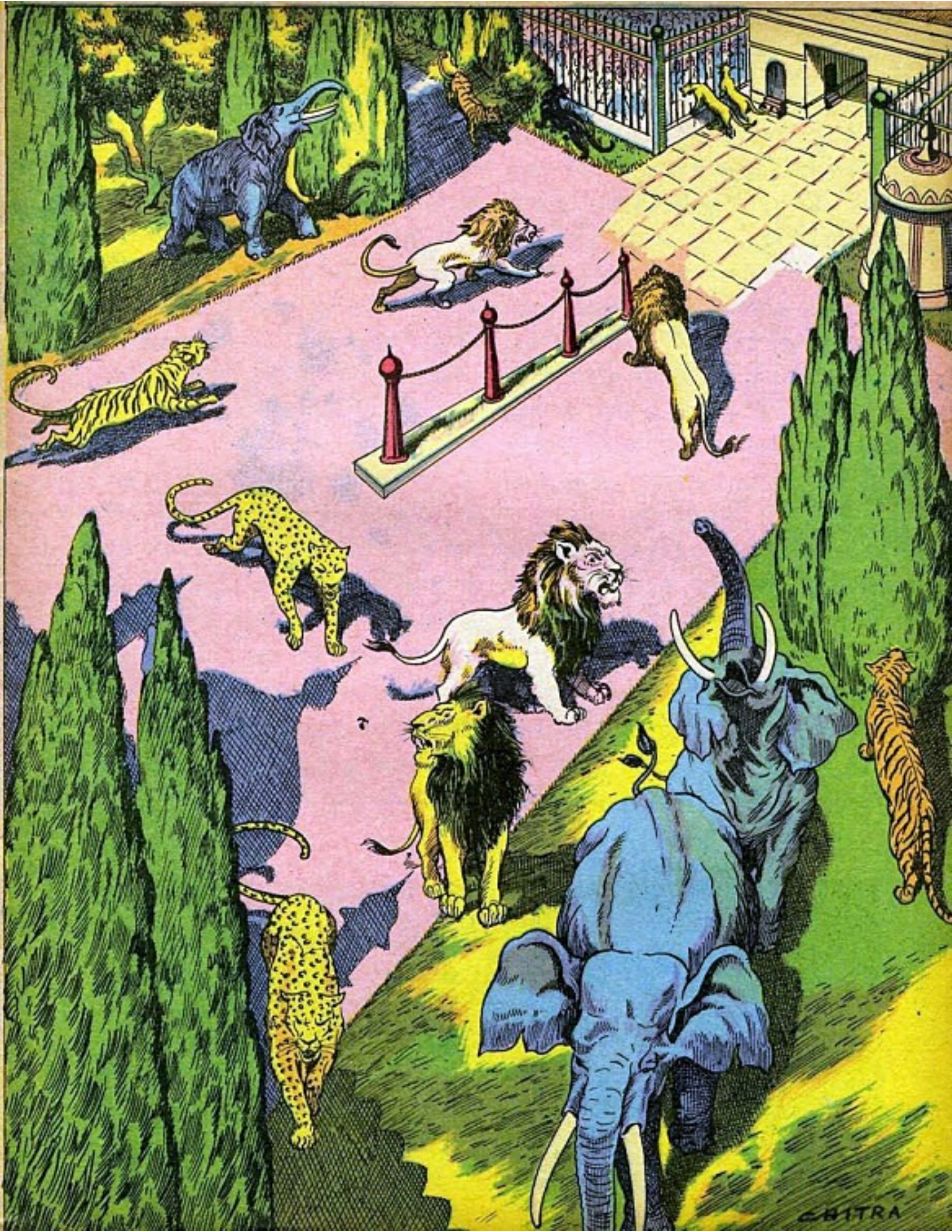
गर्जनों और हलचलों से गूंज उठा। समरसेन झट उठ खड़े हुए और तेजी से क़दम बढ़ाते महल के आगे के ऊँचे मण्डप पर पहुँचे। वहाँ पर खड़े होकर देखने से महल के सामने का खाली प्रदेश, मुख द्वार के लोहे के सींकचे और उसके पीछे के पथ पर शोरगुल मचाने वाली जनता साफ़ दिखाई देगी।

समरसेन के पीछे मैं भी जाकर मण्डप पर खड़ा हो गया। कटघरों से मुक्त किये गये खूँख्वार जानवर सारे आंगन में स्वेच्छापूर्वक इस तरह टहल रहे थे, मानो उन्हें आजादी मिल गई हो।

"शिवदत्त, तुमने बड़ा ही अच्छा उपाय सोचा।" इन शब्दों के साथ मेरी ओर देखते समरसेन हंस पड़े–"इन खूँख्वार जानवरों के डर ने उन्हें क़िले के दर्वाजों को तोड़ने से रोक दिया है। फिर भी मैं सोचता हूँ कि यह मौक़ा हमें तात्कालिक रूप से खतरे से बचकर सांस लेने के लिए मिला है। इस अराजकता को फैलाने वाले नेता कौन हैं? यह सब मुझे कुछ विचित्र सा मालूम हो रहा है।" ये शब्द कहकर समरसेन ने पीछे की ओर मुड़कर देखा।

नरवाहन मिश्र हम लोगों के पीछे थोड़ी दूर पर हाथ बांधे चुपचाप खड़ा हुआ था। थोड़ी देर बाद वह हमारे निकट आकर बोला–"समरसेन जी, जनता तो राजा को पदच्युत करने का हठ कर रही है। मैं भी यह बात नहीं जानता कि उनके नेता कौन हैं?"

समरसेन थोड़ी देर मौन रहे, तब बोले–"मैंने आज तक कभी कल्पना भी नहीं की थी कि देश में ऐसी अराजकता की हालत हो गई है। नगर की दीवारों के उस पार दुश्मन और नगर के भीतर भड़की हुई जनता–ये तो सिर्फ़ राजा को गद्दी से उतारना चाहते हैं, पर उन लोगों को राज्य का अधिकार चाहिए। शिवदत्त, इस समय की हालत यही है न? तुम्हारा क्या विचार है?" (और है)

अमूल्य हीरा

हठी विक्रमार्क पेड़ के पास लौट आया, पेड़ पर से शव उतारकर कंधे पर डाल सदा की भांति चुपचाप श्मशान की ओर चलने लगा। तब शव में स्थित बेताल ने कहा–" राजन, इस आधी रात के वक़्त आप को कठिन परिश्रम करते देख मुझे आप पर दया आती है। मैं नहीं जानता कि आप शायद किसी बड़ी संपत्ति या प्रतिष्ठा पाने की आशा से इस काम में लगे हैं! लेकिन कभी-कभी ऐसी कामनाएँ यातनाओं तथा नुक़सानों के कारणभूत बन जाती हैं। इसके उदाहरण के रूप में मैं आप को एक राजा और एक लकड़हारे की कहानी सुनाता हूँ। श्रम को भुलाने के लिए वह कहानी सुनिये।"

बेताल यों सुनाने लगा: बज्रगिरि राज्य पर राजा रविवर्मा राज्य करते थे। उसी राज्य के एक जंगली प्रदेश में

बेताल कथाएँ

चन्द्रभानु नामक एक लकड़हारा निवास करता था। उसके गोप नामक दस साल का एक लड़का था। उसका बाप उसे पढ़ने के लिए भेज देता, पर वह हमेशा जंगल में खेलते-कूदते अपना वक़्त बरबाद कर देता था।

एक दिन गोप एक झरने के किनारे बालू में खेल रहा था, तब उसे रंग-बिरंगा एक कांच का पत्थर दिखाई दिया। उसे हाथ में लेकर थोड़ी देर खेलता रहा, फिर उसे अपने घर ले आया। गोप का बाप लकड़ी का गट्ठर लेकर घर पहुँचा और उस विचित्र पत्थर को देख वह बड़ा खुश हुआ।

गोप के गोविंद नामक एक दोस्त था। गोप ने अपने दोस्त गोविंद को वह पत्थर दिखाया। उसके पास ऐसा सुंदर पत्थर न था। इसलिए गोप के प्रति उसके मन में ईर्ष्या हुई और उसने वह पत्थर चुराना चाहा। वह देर तक गोप के साथ खेलता रहा, उसे बहका कर उस पत्थर को चुरा करके अपने घर ले गया।

गोविंद का बाप बड़ा शराबी था। उस दिन रात को जब गोविंद सो गया, तब उसका बाप उसे शराबखाने में ले गया। वहाँ पर रोज एक जौहरी की दूकान में काम करनेवाला आया करता था। उसने वह पत्थर देख लिया। उसे लगा कि वह पत्थर बड़ा ही क़ीमती है।

गोविंद का बाप जब नशे में था, तब उसकी आँख बचाकर जौहरी की दूकान का कर्मचारी उसे चुरा ले गया। दूसरे दिन वह शहर के जौहरी के पास ले गया।

जौहरी ने उस पत्थर को देखते ही समझ लिया कि वह एक अमूल्य हीरा है! वह थोड़ी देर के लिए चकित रह गया, फिर संभल कर अपना चेहरा विकृत बनाकर बोला—"अरे, तुम्हें यह कमबख्त पत्थर कहाँ मिला है? यह तो रंग-बिरंगा कांच का टुकड़ा है! इसकी क़ीमत एक कौड़ी भी नहीं है! तुम बड़ी मेहनत करके

ले आये हो, इसलिए ये चार सिक्के लेते जाओ।" यों कहकर उसके हाथ में चार सिक्के रख दिये।

जौहरी ने उस दिन रात को उस पत्थर को सान पर चढ़ाया। वह क़ीमती हीरा रोशनी बिखेरते जौहरी की आँखों को चौंधियाने लगा। राजा रविवर्मा हीरों पर जान देने वाले थे। जौहरी ने सोचा कि वह हीरा राजा के हाथ सौंपने पर उसे भारी संपत्ति हाथ लगेगी। यों सोचकर वह ख़ुशी के मारे उछल पड़ा।

सवेरा होते ही जौहरी राजा के पास पहुँचा। राजा रविवर्मा उस हीरे को देख परमानंदित हुए। उन्होंने कहा कि यह हीरा उनके जैसे बड़े राजा के किरीट की शोभा बढ़ाने लायक़ है। यों कहकर राजा ने जौहरी को काफी संपत्ति दे दी।

दूसरे दिन राजा ने उस हीरे को अपने किरीट में सजाकर राज सभा में प्रवेश किया। राज सभा विचित्र कांतियों से भर उठी। सभी सभासद निर्निमेश राजा के किरीट की ओर देखते ही रह गये! इस पर राजा को बड़ा आनंद आया।

उस अमूल्य हीरे का समाचार थोड़े ही दिनों में पड़ोसी राजा वीरसिंह को मालूम हुआ। सैनिक शक्ति और संपत्ति की दृष्टि से भी वह रविवर्मा से कहीं आगे
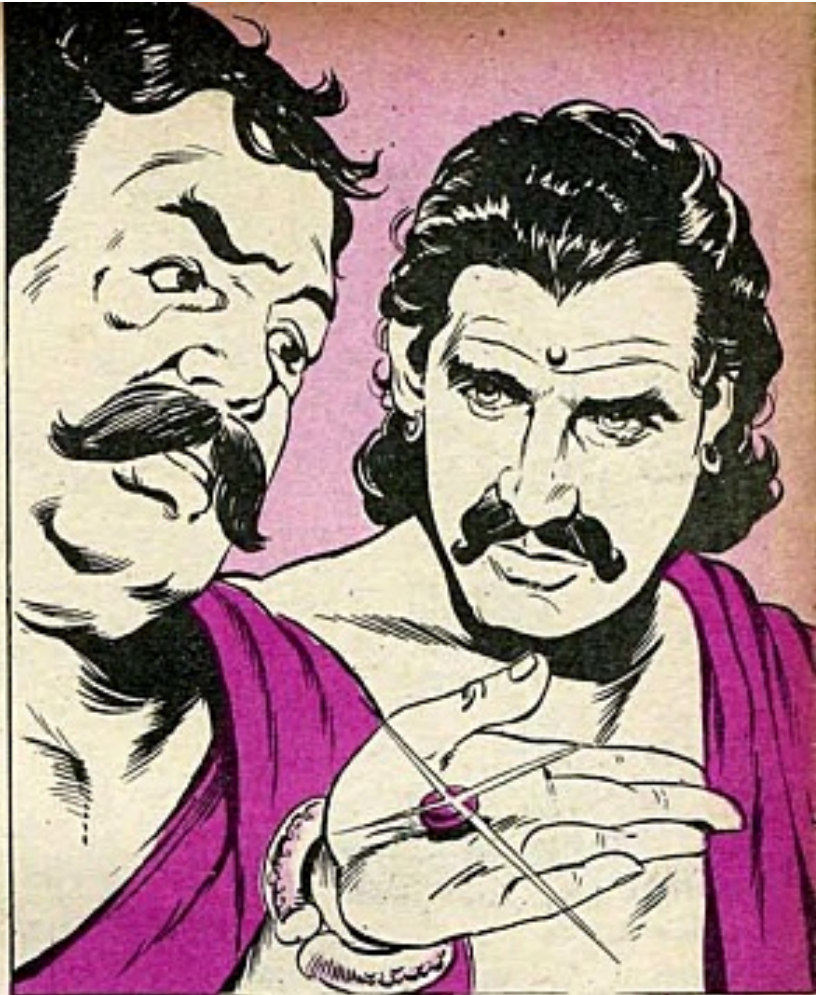
बढ़ा हुआ था। इस बात का उसे बड़ा दुख होने लगा कि उसे ऐसे क़ीमती हीरे को अपने किरीट में धारण करने का मौक़ा न मिला।

इसी विचार से प्रेरित होकर वीरसिंह ने रविवर्मा के पास ख़बर भेज दी कि वह तुरंत उस हीरे को उसके पास भेज दे, वरना लड़ाई के लिए तैयार हो जाये। रविवर्मा जानते थे कि वह वीरसिंह के सामने कमजोर है, फिर भी हीरे के प्रति उसका बड़ा मोह था, इस कारण उसने वीरसिंह के पास उसे भेजने से इनकार किया। इस पर वीरसिंह ने वज्रगिरि राज्य पर हमला किया और उस युद्ध में रविवर्मा
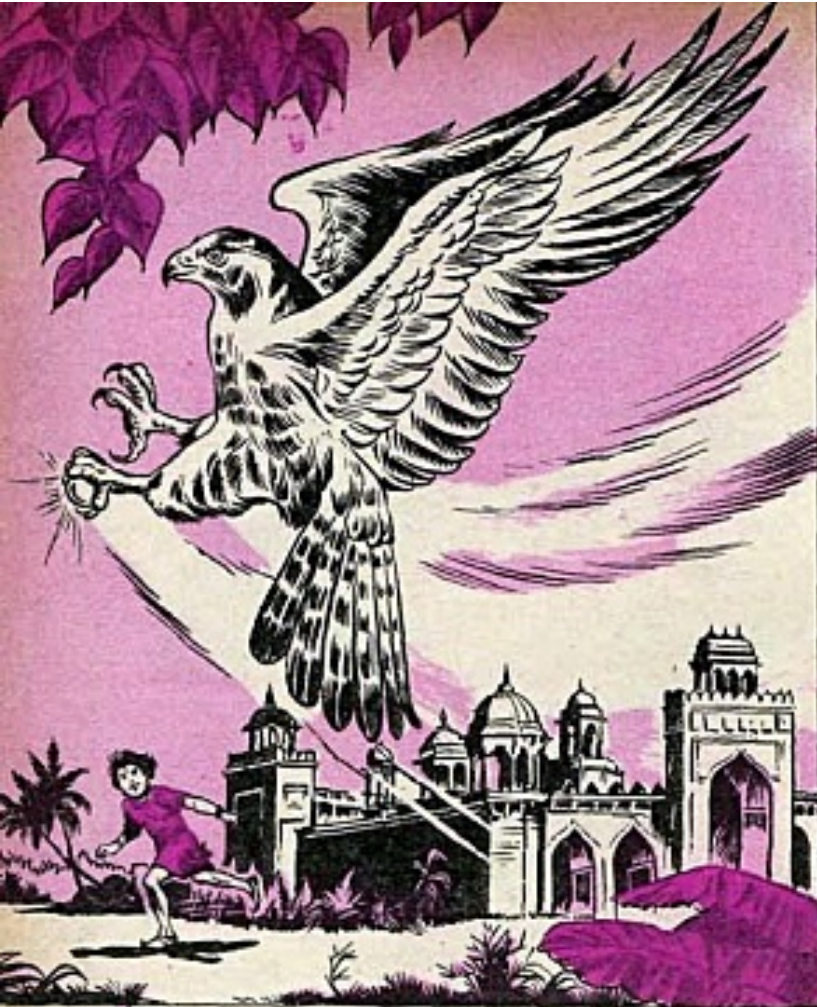
को बुरी तरह से हराया। तब हीरे के साथ रविवर्मा की गद्दी पर भी अधिकार कर लिया। इसके बाद रविवर्मा के मुकुट से हीरा निकाल कर अपने किरीट में जड़वाने के लिए कारीगरों के पास खबर भिजवा दी। इस बीच उसे एक सोने के थाल पर रखकर वे अपने सोने के कमरे में चले गये।

वीरसिंह का पांच साल का लड़का उस हीरे को देख खुशी से भर उठा और खेलने के वास्ते उसे लेकर उद्यान वन में पहुँचा। उस वक्त आसमान में उड़ने वाला बाज उस हीरे को कोई खाने की चीज़ समझ कर उसे उड़ा ले गया।

राजा वीरसिंह की समझ में न आया कि हीरा कहाँ खो गया है। दास-दासियों ने बताया कि वे इसके बारे में कुछ नहीं जानते। छोटा राजकुमार हीरे की बात उद्यान वन में ही भूल गया।

बाज हीरे को उठा ले जाकर एक पेड़ पर जा बैठा और उसे खाने की कोशिश की, मगर जब उसे मालूम हुआ कि वह कोई खाने की चीज़ नहीं है, तब वह हीरे को वहीं पर छोड़कर चला गया।

एक दिन गोप का पिता चन्द्रभानु लकड़ी काटने उसी पेड़ के पास आया। वह लकड़ी काटने पेड़ पर चढ़ा तो दो डालों के बीच आँखों को चौंधियाने वाला हीरा दिखाई दिया। चन्द्रभानु पल भर के लिए खुशी के मारे फूल उठा। हीरे को उठाने के लिए हाथ बढ़ाया, पर झट हाथ खींचकर पेड़ पर से उतर आया, पीछे की ओर मुड़कर देखे बिना अपने गाँव की ओर दौड़ पड़ा।

बेताल ने यह कहानी सुनाकर कहा– "राजन, मुझे वज्रगिरि के राजा रविवर्मा के व्यवहार के साथ उस लकड़हारे का व्यवहार भी कुछ अनोखा मालूम होता है! उस अमूल्य हीरे के प्रति ममता की वजह से राजा रविवर्मा अपने से बलवान राजा का सामना करके सर्वनाश को प्राप्त

हुए। बीरसिंह के माँगते ही रविवर्मा अगर हीरा उसे दे देते तो कम से कम उनका राज्य बच गया होता न? साथ ही लकड़हारे चन्द्रभानु को हीरे से डरने की क्या जरूरत थी? यदि वह उस हीरे को किसी के हाथ बेच देता तो उसकी दरिद्रता दूर हो जाती! इन संदेहों का समाधान जानकर भी न देंगे तो आप का सिर फटकर टुकड़े-टुकड़े हो जाएगा।"

राजा बिक्रमार्क ने यों उत्तर दिया— "राजा तथा लकड़हारे के व्यवहारों में दर असल कोई अनोखी बात नहीं है। यह तो समाज में उनका जो स्थान है, उसके अनुरूप है। किसी अपूर्व बस्तु की कामना करना, उसके प्रति ममता रखना तो मानव की सहज प्रकृति के कोई विरुद्ध नहीं है। पड़ोसी राजा के द्वारा युद्ध की धमकी देकर डराते हुए हीरा मांग ले तो उसे शत्रु राजा के हाथ में सौंपने का मतलब उसकी अधीनता को स्वीकार करना समझा जाएगा। यह तो क्षत्रियोचित धर्म नहीं है। ऐसा कायर व्यक्ति राज्य शासन के लिए नालायक़ है। इस सत्य से परिचित राजा रविवर्मा ने क्षत्रियोचित रीति से शत्रु राजा का सामना किया। युद्ध में हार-जीत सिर्फ़ धर्म और अधर्म पर निर्भर नहीं करतीं।

लकड़हारे के व्यवहार में किसी अनोखी बात की कल्पना करने की जरूरत नहीं है। वह जानता था कि उसने पेड़ पर जिस हीरे को देखा है, उसने एक सिंहासन को ही गिरा दिया है। इसलिए उसकी नज़र में वह हीरा विनाशकारक है। जब किसी मानव के भीतर धन का लोभ और जान का डर एक साथ प्रवेश करते हैं, तब बुद्धिमान व्यक्ति जान बचाने को ही अधिक प्रमुखता देगा। इसी वजह से लकड़हारा उस हीरे को छुए बिना अपने गाँव की ओर भाग गया।"

राजा के इस प्रकार मौन भंग होते ही बेताल शव के साथ गायब हो फिर पेड़ पर जा बैठा। (कल्पित)

शासक वर्ग

रंगापुर के जमीन्दार को जब भी मौक़ा मिलता, अपनी जमीन्दारी के गाँवों का निरीक्षण करके वहाँ की जनता के सुख-दुखों के बारे में पूछ-ताछ किया करते थे।

एक बार इसी सिलसिले में जमीन्दार रामापुर नामक गाँव पहुँचे। गाँव के प्रमुख लोगों की बैठक शिवाले के मण्डप में बुलाई गई। जमीन्दार और गाँव का मुखिया मंच पर बैठ गये। गाँव के निवासी एक-एक करके बैठक में आने लगे। लेकिन जो भी आये, मंच के सामने की चार कुर्सियों को छोड़ उनके पीछे की कुर्सियों पर बैठने लगे।

जमीन्दार ने अचरज में आकर पूछा—"कुर्सियों को खाली क्यों छोड़ दिया है? गाँव के कुछ प्रमुख व्यक्ति उन पर बैठ जाइये।"

जमीन्दार के मुँह से ये शब्द निकलते ही भीड़ में से एक ने उठकर कहा—"सरकार पहलवान वीरदास, ताड़ीखाने का जगन, राधाबाई का भाई सोमराज तथा महाजन वसंत गुप्त अब तक घर से निकल पड़े होंगे। उन्हें फ़र्श पर बिठाना अच्छा नहीं है न?'

यह जवाब सुनने पर जमीन्दार को गाँव की असली हालत समझ में आ गई। उन्होंने कहा—"ओह, गाँव के शासक वर्ग के रूप में तुम्हारी मदद करने वाले कुछ ऐसे ही लोग हैं, मैं तुमको इसी वक्त उस पद से हटा देता हूँ और भरी सभा में सच्ची बात को निडरता के साथ प्रकट करने वाले व्यक्ति को मैं उस पद पर नियुक्त करता हूँ।"

इस पर सभा में उपस्थित सभी लोगों ने खुशी के मारे तालियाँ बजाई।

मुँशी की नौकरी

काशीपुरा के जमींदार शेखर वर्मा के यहाँ ईश्वर प्रसाद नामक मुँशी था। वह बड़ा ही ईमानदार और चुस्त था। इस कारण जमींदार की उसके प्रति विशेष कृपा थी।

एक बार ईश्वर प्रसाद बीमार पड़ा। जमीन्दार ने अपने निजी वैद्य को ईश्वर प्रसाद के घर ले जाकर उसकी जांच कराई।

वैद्य ने बड़ी लगन के साथ दो हफ़्ते तक ईश्वर प्रसाद का इलाज किया, तब वह इस निर्णय पर पहुँचा कि उसका इलाज संभव नहीं है, और उसने यह बात जमीन्दार से कह दी। जमीन्दार ने वैद्य के द्वारा यह खबर ईश्वर प्रसाद के परिवार को कहलवा दी और खुद बीमार व्यक्ति को देखने पहुँचा।

दिन ब दिन अपनी तबीयत के बिगड़ते जाने की बात भांपकर ईश्वर प्रसाद ने जमीन्दार से बिनती की–"महानुभाव, मेरे तो इकलौता बेटा है, मेरा विश्वास है कि मेरे मरने के बाद आप मेरे बेटे को अपने यहाँ कोई न कोई नौकरी जरूर देंगे। अगर आप न दे तो मेरा परिवार तबाह हो जाएगा।" यों कहते उसने आँखों में आँसू भर लिये।

जमीन्दार ने ईश्वर प्रसाद को सब्र दिलाते हुए कहा–"ईश्वर प्रसाद, तुम चिंता न करो। तुम्हारी नौकरी तुम्हारे बेटे को देने का मैंने निश्चय किया है!"

इसके तीन दिन बाद ईश्वर प्रसाद मर गया। एक हफ़्ता रुक कर जमीन्दार ने ईश्वर प्रसाद के बेटे के यहाँ खबर भिजवा दी, वह जब जमीन्दार से मिलने पहुँचा, तब पड़ोसी गाँव के एक आदमी ने आकर जमीन्दार के हाथ एक चिट्ठी दी। वह चिट्ठी रामनाथपुर के जमींदार ने भेजी थी।

अमृता पांडे

उसमें उन्होंने लिखा था कि यह चिट्ठी लानेवाला आदमी छे साल से मेरे यहाँ मुंशी का काम करता आ रहा है, चूंकि वह काशीपुरा का निवासी है, इसलिए वहाँ आप की कचहरी में काम चाहता है । इसलिए आप इसे मुंशी का काम दे दें ।

उस चिट्ठी ने जमीन्दार शेखर वर्मा को संकट में डाल दिया । जो व्यक्ति हिसाब-किताब का छे साल का अनुभव रखता है, उसे किस बहाने नौकरी देने से इनकार कर सकता है? अगर उसे यह काम दे तो कई सालों से उनके यहाँ काम करने वाले ईश्वर द्रसाद के परिवार को भूखों रहना पड़ेगा । जमीन्दार देर तक सोचते रहे, तब बोले–"आपके जमीन्दार साहब ने पिछले साल मुझसे एक हज़ार रुपये उधार में लिये, पर अभी तक नहीं चुकाया । तुम उन्हें तुरंत यह खबर सुना दो और कल आकर मुझसे मिल लो ।"

वह आगंतुक व्यक्ति उसी वक़्त चला गया । दूसरे दिन लौटकर जमीन्दार शेखर वर्मा से बोला–"सरकार, हमारे जमीन्दार साहब ने बताया है कि उन्होंने आप से कभी कर्ज़ नहीं लिया है । उन्हीं की जमींदारी में रामनाथपुर नामक एक छोटा-सा कस्बा भी है, शायद वहाँ के किसी आदमी ने आप से कर्ज़ लिया होगा ।"

इस पर शेखर वर्मा मुस्कुरा कर बोले–"दर असल तुम्हारे जमीन्दार ने मुझसे कोई कर्ज़ नहीं लिया है । तुमने बताया कि तुम छे साल से रामनाथपुर जमीन्दारी का हिसाब देखते आ रहे हो, इसलिए मैं तुमसे एक छोटा-सा झूठ बोला । तुम अपने जमीन्दार से यह बात पूछ आये हो । इससे साफ़ मालूम होता है कि तुम्हें रामनाथपुर की जमीन्दारी का हिसाब बिलकुल याद नहीं है । ऐसे आदमी को मेरे यहाँ नौकरी नहीं मिल सकती !"

इसके बाद उसी दिन जमीन्दार शेखर वर्मा ने ईश्वर प्रसाद के बेटे फो मुंशी की नौकरी दे दी ।
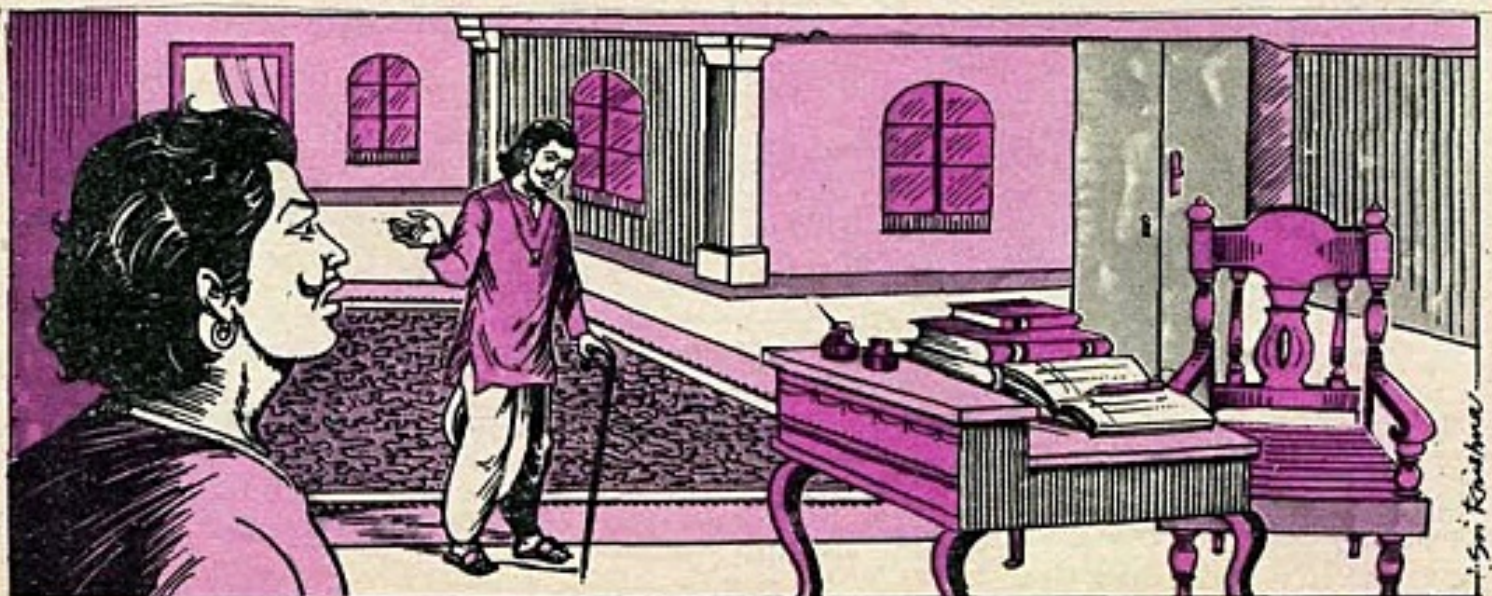
निजी फ़ायदा

एक गाँव में जोगीन्दर नामक एक युवक रहा करता था। वह बड़ा आलसी था। लोग उसे भले ही दुतकार दे, फिर भी वह घर-घर जाकर भीख मांगता, जो कुछ मिलता, खा-पीकर गाँव के छोर पर स्थित काली मंदिर में जाकर, जो उजड़ा हुआ था, मजे में सो जाता।

एक बार उसे लगातार दो दिन तक कहीं खाना न मिला। वह भूख से तड़पते हुए पैर घसीटते काली मंदिर में पहुँचा और वह मन ही मन बड़बड़ाने लगा—"इस गाँव में अन्नदान की महिमा जानने वाले कोई पुण्यात्मा अब नहीं रह गये।"

जोगीन्दर की पीड़ा देख कालीमाता को दया आई, वे प्रत्यक्ष होकर बोलीं—"अरे जोगीन्दर, जब तुम बिलकुल तंदुरुस्त हो, ऐसी हालत में भीख क्यों मांगते हो? तुम रोज मेहनत करके मुझे एक रुपया दोगे तो मैं तुम्हें दस रुपये दूँगी।"

ये बातें सुन जोगीन्दर बड़ा खुश हुआ, विनयपूर्वक हाथ जोड़कर बोला—"माताजी, रोज मुझे मेहनत उठाकर काम करना ही क्यों? आप ने रोज मुझे दस रुपये देने का वचन दिया, उनमें से एक रुपया आप रख लीजियेगा, बाकी नौ रुपये मुझे दे दीजिए! इससे आपके लिए एक रुपये का लाभ होगा!"
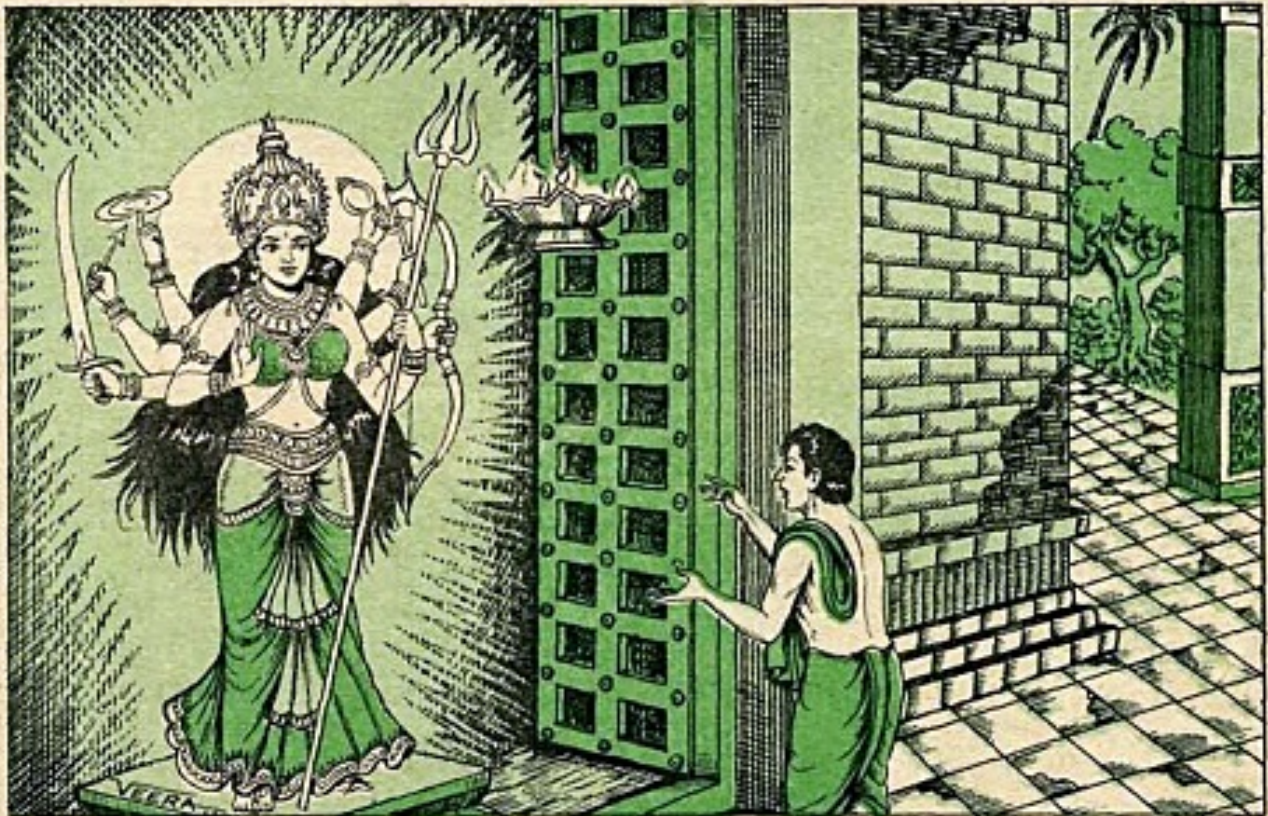
कचहरी भैंसे

लक्ष्मीपुर के जमीन्दार सत्यदेव के कुछ खेत कृष्णापुर में भी थे। उन खेतों की देखभाल करने के लिए उन्होंने वेंकटेश नामक एक काश्तकार को नियुक्त किया। वेंकटेश बड़ा ईमानदार और विश्वासपात्र था, इस वजह से उस पर निगरानी रखने के लिए जमीन्दार को किसी कर्मचारी को नियुक्त करने की जरूरत न पड़ी।

खेतीबारी के लिए जमीन्दार ने दो क़ीमती भैंसे खरीदे और वेंकटेश के हाथ सौंप दिया। वेंकटेश वक़्त पर उन भैंसों को दाना-पानी देता और फ़ुरसत के समय धूप में तालाब के पास ले जाकर उन्हें नहलाता था। भैंसे तंदुरुस्त और तगड़े थे, इस वजह से भारी बोझ को भी बड़ी आसानी से खींच सकते थे। लोग सब जगह यही कहते-फिरते थे कि चारों तरफ़ के गाँवों में उन भैंसों की बराबरी करने वाले भैंसे कहीं नहीं हैं। वेंकटेश ने प्यार से उन्हें कचहरी भैंसे नाम रखा।

जमीन्दार का साला रामदेव कृष्णापुर के खेतों की पैदावर व खर्च का हिसाब लिखकर हमेशा रुपये हड़पने की सोचा करता था। मगर वेंकटेश ईमानदार था, इस कारण उसकी दाल गलती न थी। इस वजह से रामदेव वेंकटेश से मन ही मन जलता था।

एक दिन धान के बोरों से लदी किसी की गाड़ी जमीन्दार के खेत के समीप की नहर में धंस गई। आसपास के खेतों में काम करने वाले किसानों ने आकर उस गाड़ी को कीचड़ से बाहर निकालना चाहा, मगर गाड़ी में जुते भैंसे गाड़ी को कीचड़ से बाहर खींच नहीं पाये। इस पर वेंकटेश को उस किसान पर बड़ी दया आई, उसने जमीन्दार के भैंसों को गाड़ी में

रमणलाल

जोतकर उस गाड़ी को कीचड़ से बाहर निकलवा दिया।

यह खबर मिलते ही रामदेव लक्ष्मीपुर पहुँचा और जमीन्दार से शिकायत की– "बहनोईजी, हमारा काश्तकार वेंकटेश हमारे भैंसों को हर किसी की मदद करने में काम में ला रहा है! हम जो भारी रक़म उन भैंसों के पीछे खर्च करते हैं, वह इसलिए कि हम उनसे हमारी खेतीबारी के काम लें।"

यह शिकायत सुनकर जमींदार मुस्कुरा उठा, मूँछों पर ताव देते हुए बोला– "रामदेव, कीचड़ में धंसी गाड़ी को अगर हमारे भैंसों ने बाहर निकाला, तो इस पर हमें गर्व करना चाहिए। यह खबर मैंने पहले ही सुन ली है! मैंने रामदेव के पास इनाम के रूप में पच्चीस रुपये भी भिजवा दिया है।"

इस पर रामदेव का चेहरा पीला पड़ गया। वह अपने बहनोई के साथ चुपचाप खाना खाकर कृष्णापुर को लौट गया।

इसके बाद एक त्योहार के दिन जमीन्दार ने आनंदराज नामक अपने एक मित्र को लक्ष्मीपुर आने का निमंत्रण भेजा। आनंदराज ने जमींदार के घर एक हफ़्ता बिताया, एक दिन एक कर्मचारी को साथ ले जमीन्दार के खेत देखते आखिर कृष्णापुर पहुँचा।

हल में जुते जानेवाले भैंसों को देख वेंकटेश से आनंदराज ने पूछा–"ये भैंसे

बचपन से ही तुम्हारी देखभाल में पले हैं न? मैंने सुना है कि आसपास के गाँवों में इनकी बराबरी करने वाले भैंसे नहीं हैं!"

भैंसों की तारीफ़ सुनकर वेंकटेश फूला न समाया, बोला—"सरकार, ये पशु तो बेचारे गूंगे हैं। इनकी जरूरतों का ख्याल हमें खुद रखना पड़ता है! मुझे तो कचहरी में जाने की जरूरत नहीं पड़ती। इन भैंसों को ही अपनी कचहरी मानकर अपने प्राणों के बराबर में इनकी देखभाल करता हूँ।"

उस वक़्त आनंदराज के साथ रामदेव भी था। वह वेंकटेश का जवाब सुनकर मन ही मन खीझ उठा। इसके बाद आनंदराज के साथ जमीन्दार के पास पहुँच कर बोला—"बहनोईजी, हमारा काश्तकार वेंकटेश हमारी कचहरी के बारे में जो मुँह में आया, सो बकता जा रहा है! उसकी नजर में कचहरी और भैंसों के बीच कोई अंतर नहीं है! चाहे तो आप इसी आनंदराज से पूछ लीजियेगा!"

आनंदराज ने वेंकटेश के साथ जो वार्तालाप किया था, वह सारा का सारा जमीन्दार को कह सुनाया।

जमीन्दार आनन्दराज के मुँह से सारी बातें सुनकर बड़ा खुश हुआ और बोला—"वेंकटेश ने ये ही बातें इसके पहले एक-दो बार मुझसे भी बताई हैं। वह भैंसों को कचहरी मानकर जैसी सावधानी के साथ उनका पालन-पोषण कर रहा है, इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि वह कैसा विश्वासपात्र है! हमारी कचहरी के पैसों का दुरुपयोग करते हुए गलत हिसाब लिखने वाले कुछ भैंसे भी हैं। उन भैंसों से मैं नफ़रत करता हूँ! उनसे मैं थोड़ा-बहुत डरता भी हूँ!"

इसके बाद जमीन्दार रामदेव से बोला—"कृष्णापुर पहुँचते ही मेरी तरफ़ से वेंकटेश को पच्चीस रुपये इनाम दे दो।"

रामदेव की चाल चली नहीं, उल्टे वेंकटेश को पच्चीस रुपये का इनाम मिलते देख रामदेव का दिल बैठ गया।

गुरु की जिम्मेदारी

ब्रह्मदत्त जिन दिनों में काशी राज्य पर शासन करते थे, उन दिनों में बोधिसत्व ने तक्षशिला नगर में एक बहुत ही बड़े शिल्पाचार्य के रूप में जन्म लिया। उनके यहाँ शिल्प विद्या का अध्ययन करने के लिए देश के कोने-कोने से कई राजकुमार आया करते थे।

तक्षशिला नगर के शिल्पाचार्य के यश का समाचार सुनकर काशी नरेश ने भी अपने पुत्र को विद्याभ्यास के लिए उनके यहाँ भेजने का निर्णय किया। लेकिन सोलह वर्ष की कम उम्रवाले राजकुमार को अकेले दूर पर स्थित तक्षशिला में भेजना और वहाँ पर गुरु की सेवा-शुश्रूषा करते शिक्षा प्राप्त करना मंत्री और सामंतों के लिए कतई पसंद न था।

इस विचार से सब ने कहा—" महाराज, शिल्प विद्या के कई पंडित हमारे ही नगर में हैं; ऐसी हालत में युवराजा को तक्षशिला में क्यों भेजना है?"

पर राजा ने उनके सुझाव को न माना। उनका विचार था कि उनकी राजधानी में उनका पुत्र युवराजा के ओहदे पर शिल्प विद्या का अभ्यास करना मुमकिन न होगा।

यों विचार कर राजा ने अपने पुत्र को एक जोड़े खड़ाऊ और ताड़-पत्रों वाला छाता मात्र देकर आदेश दिया—"तुम तक्षशिला में जाकर वहाँ के शिल्पाचार्य के यहाँ शिक्षा प्राप्त करो। शिक्षा के समाप्त होते ही लौट आओ! उन्हें गुरु दक्षिणा के रूप में सौंपने के लिए एक हजार चांदी के सिक्के अपने साथ लेते जाओ।"

राजकुमार अपने पिता के आदेशानुसार अकेले चल पड़ा। एक हजार चांदी के सिक्कोंवाली गठरी को ढोते जब वह थक जाता, तब किसी पेड़ के नीचे आराम

करता। इस तरह बड़ी तक़लीफ़ें झेलकर आख़िर वह तक्षशिला में पहुँचा।

युवराजा ने शिल्पाचार्य के दर्शन करके अपने आने का समाचार बताया। एक हज़ार चांदी के सिक्के उनके हाथ सौंपकर विद्याभ्यास शुरू किया। राजकुमार की शिल्प विद्या अच्छी तरह से चलने लगी। उसकी प्रखर बुद्धि पर गुरु भी बहुत प्रसन्न हुए।

थोड़े दिन बीत गये। गुरु और शिष्य रोज सवेरे नगर के बाहर नदी में जाकर स्नान करके लौट आते थे। एक दिन जब वे दोनों नहा रहे थे, तब एक बूढ़ी औरत थोड़े तिल ले आई, पानी में धोकर साफ़ किया, फिर नदी के किनारे एक वस्त्र बिछाकर उस पर सुखा दिया।

राजकुमार तिल को देखते ही झटपट स्नान पूरा करके किनारे पर पहुँचा। बूढ़ी को असावधान देख मुट्ठी भर तिल मुंह में डाल लिया। बूढ़ी ने इसे भांप लिया, लेकिन वह चुप रह गई।

दूसरे दिन भी राजकुमार ने ऐसा ही किया। बूढ़ी देखकर भी अनदेखी सी रह गई। तीसरे दिन भी राजकुमार ने मुट्ठी भर तिल खा लिया। इस पर बूढ़ी को उस युवक की चुराने की आदत पर बड़ा गुस्सा आया।

जब शिल्पाचार्य स्नान समाप्त कर नदी के किनारे पहुँचे, तब बूढ़ी औरत ने आचार्य से शिकायत की–"आचार्यजी, तीन दिन से बराबर आप का शिष्य मेरे तिल चुराकर खाता जा रहा है। तिल के नष्ट होने का मुझे दुख नहीं है, लेकिन उस युवक के द्वारा चुराने की आदत डालना मुझे अच्छा नहीं लगता। यह आप के यश में कलंक लगने की बात होगी। कृपया उसे ऐसा दण्ड दीजिए जिससे वह आइंदा ऐसी चोरी न करे।"

घर लौटते ही शिल्पाचार्य ने बाक़ी शिष्यों को राजकुमार के हाथ कसकर पकड़ने को कहा, तब राजकुमार की पीठ

पर छड़ी से तीन बार मार कर कहा– "तुमने जो अनुचित कार्य किया है, उसके लिए यही सजा है! आइंदा तुम ऐसा काम बिलकुल न करो।"

राजकुमार को गुरु पर बड़ा क्रोध आया, लेकिन वह काशी राज्य की सीमा के अन्दर राजकुमार है, मगर वहां पर एक साधारण व्यक्ति था। उसे दण्ड देने का अधिकार गुरु को है।

राजकुमार ने क्रोध में अंधे होकर उसी वक़्त अपने मन में यह शपथ ली–"मेरे राजा बनने के बाद इस दुष्ट को किसी बहाने काशी राज्य में बुलवाकर जरूर इसकी जान ले लूंगा।"

कालक्रम में राजकुमार की शिक्षा समाप्त हुई। काशी को लौटते वक़्त राशकुमार ने अपने गुरु को प्रणाम किया और उनके आशीर्वाद प्राप्त किये।

इसके बाद राजकुमार ने अपने गुरु से कहा–"आचार्यजी, मेरे राजा बनने के बाद आप को एक बार अवश्य काशी नगर में पधारना होगा। उस समय में उचित रीति से आपका सत्कार करना चाहता हूँ।"

अपने शिष्य के निमंत्रण पर गुरु बहुत खुश हुए और उन्होंने अपनी स्वीकृति दी।

काशी नगर को लौटने के थोड़े साल बाद राजकुमार का राज्याभिषेक हुआ। एक दिन उसे अपने गुरु की बात याद हो उठी। उसी वक़्त उसने अपने एक नौकर को बुलाकर आज्ञा दी–"तुम तक्षशिला नगर जाकर शिल्पाचार्य के दर्शन कर लो और उन्हें मेरा यह निमंत्रण-पत्र सौंप दो।"

शिल्पाचार्य निमंत्रण पाकर भी तुरंत काशी के लिए रवाना न हुए। उन्होंने सोचा कि राजा गद्दी पाने के शौक में होगा। राज्य-भार का उसे अनुभव होने के बाद मिलना उचित होगा।

इसी निर्णय के अनुसार शिल्पाचार्य थोड़े दिन बाद काशी नगर पहुँचे और राजमहल में रहने वाले अपने शिष्य को देखने गये। राजा के गुरु के आने का

समाचार सुनकर सभासदों ने शिल्पाचार्य के प्रति बड़ा आदर भाव दिखाया और उन्हें एक ऊँचे आसन पर बिठाया।

गुरु को देखते ही राजा को अपना पुराना क्रोध याद हो आया और उसका क्रोध खौलता गया। उसने गुरु की ओर तीक्ष्ण दृष्टि डालकर पूछा–"मुट्ठी भर तिल खाने पर दण्ड देनेवाले को हाथ में आने पर कहीं प्राणों के साथ छोड़ दिया जाता है?"

राजा ने सोचा कि सभासदों की समझ में न आनेवाले ढंग से शिल्पाचार्य के मन में मौत का डर पैदा कर फिर सुविधानुसार उसे मार डाले, लेकिन राजा की कल्पना के अनुसार शिल्पाचार्य डरे नहीं। उल्टे उन्होंने राजा का रहस्य इस रूप में प्रकट किया–"हे राजन, जब तुम मेरे यहाँ शिष्य थे और तुम मेरी जिम्मेदारी के अधीन थे, तब तुमने अपने ओहदे के विपरीत काम किया। शिष्य के दुष्टतापूर्ण व्यवहार पर दण्ड देकर उसे अच्छे पथ पर लाना गुरु का कर्तव्य है। अगर उस दिन मैंने तुम्हें दण्ड न दिया होता तो तुम आज काशी राज्य के राजा बनने के बजाय डाकू बन गये होते। बुद्धिमान लोग जब कोई अपराध करते हैं, तब वे उन्हें दण्ड देने वालों पर नाराज़ नहीं होते! बल्कि उनके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हैं।"

इस पर असली बात सभासदों पर प्रकट हो गई। राजा का अपमान हुआ। वह गद्दी से उतर कर आया, गुरु के पैरों पर गिरकर बोला–"महानुभाव, एक बार और मेरा मन गलत रास्ते पर जा रहा था, उसे आप ने सही रास्ते पर लगाया। मैं आप के प्रति हमेशा के लिए कृतज्ञ हूँ!"

राजा के भीतर यह परिवर्तन देख सभासदों के साथ गुरु भी बहुत खुश हुए।

इसके बाद राजा के अनुरोध पर शिल्पाचार्य ने अपना निवास तक्षशिला से काशी के लिए बदल डाला और दरबारी आचार्य के पद पर रहते हुए राजा को सही मार्ग पर चलने की प्रेरणा देते रहें।

पृथ्वीराज – संयोगिता - २

बूढ़ी दासी ने कन्नौज पहुँचकर सबसे पहले संयोगिता की सखियों से दोस्ती कर ली। वे सखियाँ दासी को संयोगिता के पास ले गईं। दासी की वाक्चातरी और शिष्ट व्यवहार ने संयोगिता को खूब आकृष्ट किया।

दासी संयोगिता की परिचर्या करते मौक़ा पाकर पृथ्वीराज के साहसी कार्यों का उसे परिचय कराने लगी। इस प्रकार कुछ ही दिनों में पृथ्वीराज के प्रति संयोगिता के मन में अनुराग पैदा हुआ।

दासी कन्नौज चलते वक़्त अपने साथ पृथ्वीराज का एक चित्र ले आई थी। संयोगिता ने जब उस चित्र पर अपनी नज़र डाली, तब उसे इसके पूर्व पृथ्वीराज को अजमेर के राजमहल में देखने की स्मृतियाँ ताज़ा हो उठीं। इस पर उसने अपने मन में निश्चय कर लिया कि वह पृथ्वीराज को छोड़ और किसी के साथ विवाह न करेगी।
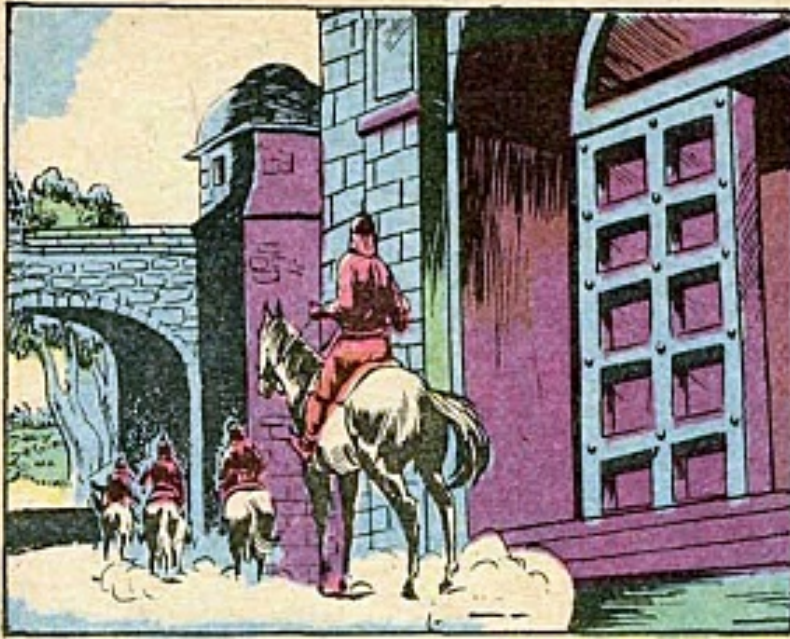
राजा जयचन्द्र ने अपने दूतों के द्वारा विवाह के योग्य राजकुमारों के पास संयोगिता के स्वयंवर का समाचार भेजा। कन्नौज नगर के नागरिक बड़े ही उत्साह के साथ संयोगिता के स्वयंवर के दिन का इंतजार करने लगे।

स्वयंवर में बहुत से राजकुमार आये। संयोगिता की सखियों ने मंत्रियों के द्वारा यह समाचार जान लिया कि पृथ्वीराज स्वयंवर के लिए निमंत्रित नहीं हुए हैं। यह ख़बर सखियों ने संयोगिता को दी।
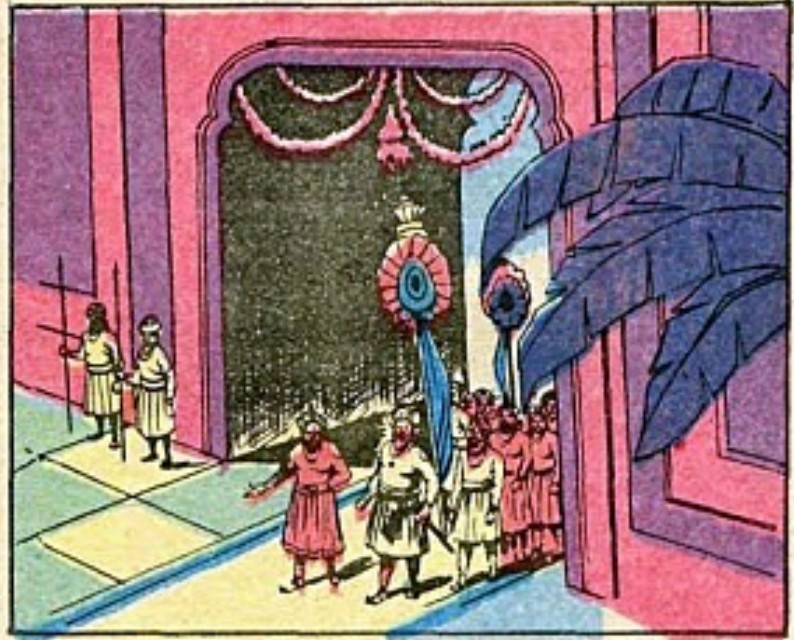
संयोगिता की सखियों ने जयचन्द्र से निवेदन किया कि संयोगिता पृथ्वीराज के पास भी निमंत्रण भिजवाने का अनुरोध करती है। इस पर जयचन्द्र ने उत्तर दिया—"मैं देखूंगा कि किसी रूप में वह भी स्वयंवर में जरूर हाजिर हो जाये।" संयोगिता जानती थी कि उसका पिता पृथ्वीराज के प्रति शत्रु का भाव रखता है। यह सोचकर वह चिंता में डूब गई।

अपनी सखियों के साथ स्वयंवर के मण्डप में जाते संयोगिता ने द्वार पर पृथ्वीराज की प्रतिमा को देखा। वह प्रतिमा द्वारपाल की पोशाकों में अलंकृत थी। संयोगिता पल भर के लिए चकित रह गई, पर तुरंत वह एक दृढ़ निश्चय पर पहुँची।

वलयाकृति में स्थित स्वयंवर मण्डप में उचित आसनों पर बैठे मंदहास के साथ स्वागत करने वाले राजकुमारों का संयोगिता को प्रधान सखी ने परिचय कराया। संयोगिता ने उस वलय की एक बार परिक्रमा की, पर उसने किसी भी राजकुमार के कंठ में वरमाला न डाली।

स्वयंवर के मण्डप से संयोगिता को बाहर निकलते देख सब लोग आश्चर्य में आ गये। पर इसका कारण किसी की समझ में न आया। इतने में संयोगिता ने द्वार पर स्थित पृथ्वीराज की प्रतिमा के कंठ में वरमाला डालकर प्रणाम किया।
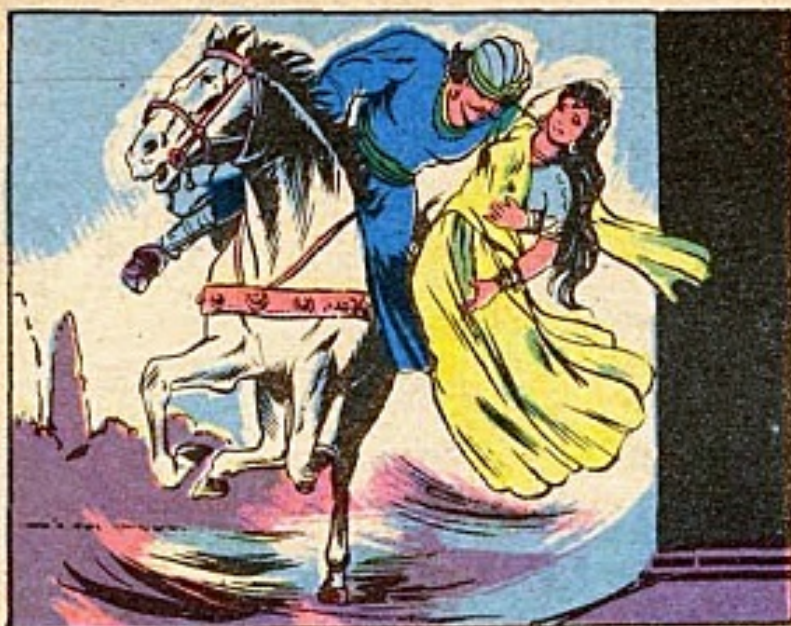
दूसरे ही क्षण एक अनोखी घटना घटी। प्रेक्षकों के पीछे से एक अश्वारोही बिजली की गति के साथ संयोगिता के सामने आया, घोड़े से उतरकर गुप्त रूप से संयोगिता से कुछ कहा। संयोगिता ने मंदहास पूर्वक सर हिलाया।

सब लोग चकित हो देखते रहे, इस बीच संयोगिता घोड़े पर जा बैठी। दूसरे ही क्षण अश्वारोही एक ही छलांग में घोड़े पर लांघ बैठा। वह छद्म वेष में स्थित पृथ्वीराज थे। लोग संभल न पाये थे, इस बीच पृथ्वीराज ने घोड़े पर एड़ लगाई और संयोगिता के साथ उस प्रदेश को छोड़ निकल गये।
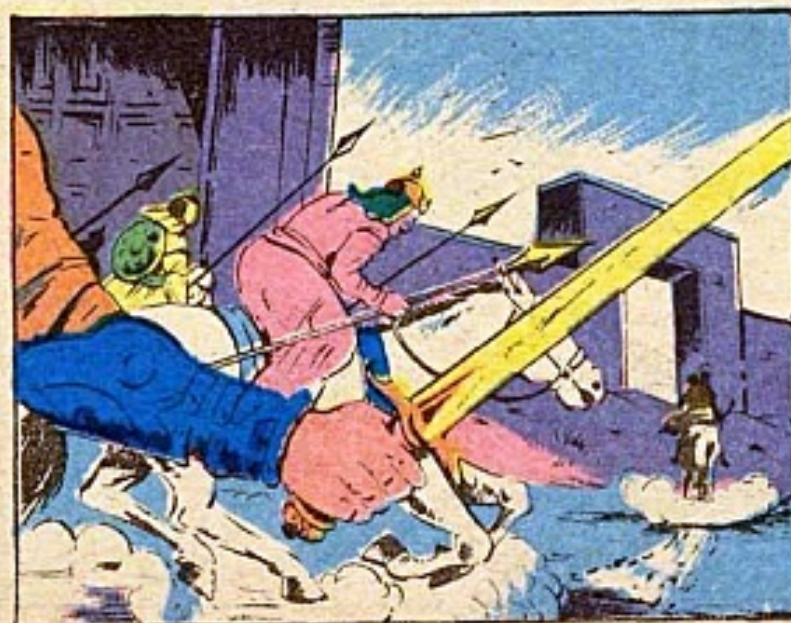
जयचन्द्र ने असहनीय क्रोध में आकर चिल्लाकर कहा—" उन दोनों को बन्दी बनाओ।" अपने राजा का आदेश पाकर बहुत सारे अश्वारोहियों ने भागनेवाले पृथ्वीराजा का पीछा किया। वहाँ पर बड़ा कोलाहल मचा। संयोजिता भयकंपित हुई।

—(अगले अंक में समाप्य)

जान का डर

राजा के महल से एक दिन हीरों का कंगण खो गया। वैसे अंत:पुर के पहरेदार तीन आदमी थे। राजा ने उन्हें बुलवाकर डराया, धमकाया, मगर तीनों ने साफ़ बताया कि वे कंगण के बारे में कुछ नहीं जानते।

इस पर राजा का क्रोध भड़क उठा, उन्होंने बधिक को बुलाकर आदेश दिया कि तीनों पहरेदारों के सर काट दे। उसी वक्त वहाँ पर मंत्री आ पहुँचा। सारी बातें जानकर बोला–"महाराज, इन तीनों में चोर एक ही है। उसके अपराध के लिए दो भोले लोगों का सर कटवाना न्याय संगत नहीं है। मैं जानता हूँ कि इनमें से चोर कौन है?"

"तब तो उसी चोर का सर कटवा दो।" राजा ने कहा। मंत्री ने पहरेदारों से कहा–"बधिक के हाथ में तलवार को देख कांप मत जाओ! वह तो उसी का सर काटेगा जिसने हीरोंवाला कंगण चुराया है! तुम तीनों सर झुकाकर अंतिम बार भगवान से प्रार्थना कर लो।"

इस पर तीनों पहरेदारों ने अपने सर झुकाये। पर उनमें से गंगाराम नामक पहरेदार बार-बार सर उठाकर बधिक की ओर देखने लगा। इस पर मंत्री ने उसकी ओर इशारा करके राजा से निवेदन किया–"महाराज, यही सच्चा चोर है!"

इसके बाद राजा ने अपने सिपाहियों को भेजकर गंगाराम के घर की तलाशी करवाई, उसके घर में हीरोंवाला कंगण बरामद हुआ। इस पर राजा ने मंत्री की तारीफ़ की और पहरेदार गंगाराम को कारागार की सजा सुनाई।

मूर्खता का फल

चालीस साल का एक अधेड़ उम्र का आदमी एक सफ़ेद रंगवाले झबरीले कुत्ते को साथ ले विजयनगर जा रहा था, रास्ते में रामभरोसे नामक एक देहाती व्यक्ति से उसकी मुलाक़ात हुई।

बातचीत के सिलसिले में रामभरोसे ने बताया कि वह अपनी बेटी की शादी के वास्ते गहने खरीदने जा रहा है, उसने अपने हमसफर से पूछा—"आप इस कुत्ते को क्यों नगर में लिये जा रहे हैं?"

"मेरा नाम भैरव सिंह है। यह मेरा पालतू कुत्ता है। मैं किसी खास काम पर नगर में जा रहा हूँ।" कुत्ते के मालिक ने जवाब दिया। कुत्ते की खूबसूरती देख रामभरोसे मुग्ध हो उठा, और कुछ आगे-पीछे सोचे बगैर भैरव सिंह से पूछ बैठा—"क्या आप यह कुत्ता बेचना चाहते हैं? इसका क्या दाम है?"

यह सवाल सुनकर भैरव सिंह अचरज में आ गया, रामभरोसे को एडी से लेकर चोटी तक परख कर देखा, तब बोला—"अच्छी बात है, बेच दूंगा, लेकिन इसकी क़ीमत एक हज़ार रुपये है।"

"एक हज़ार रुपये! यह लोभ ठीक नहीं है। इसकी क़ीमत पांच-छे रुपये से ज़्यादा न होगी!" रामभरोसे ने गुस्से में आकर कहा।

"अरे, तुम चाहे इसे लोभ समझो, या प्रलोभन मानो, मुझे इससे मतलब ही क्या है? मेरे कुत्ते की क़ीमत एक हज़ार रुपये है!" भैरव सिंह गरजकर बोला।

"आप जो क़ीमत बताते हैं, उतना मूल्य देकर कोई बेवकूफ़ क्या, वज्र मूर्ख भी नहीं खरीदेगा!" रामभरोसे ने मजाक़ उड़ाया।

कमला वर्मा

"अच्छा, तब तो दाँव लगाओगे? तुम्हारे देखते में इसे एक हज़ार में बेच डालूँगा!" भैरव सिंह ने चुनौती दी।

"अच्छी बात है! आप एक हज़ार रुपये में कुत्ता बेचेंगे तो मैं आप को एक सौ रुपये दूँगा। अगर आप बेच न पायेंगे तो मुझे आप एक सौ रुपये देंगे! समझे!" रामभरोसे ने शर्त लगाई। इसके बाद वे दोनों विजयनगर के एक बड़े बाज़ार में पहुँचे। एक-दो आदमियों ने भैरव सिंह से कुत्ते का दाम पूछा। उसने एक हज़ार रुपये कुत्ते का दाम बताया, इस पर वे लोग उसे पागल समझ कर चुपचाप आगे बढ़ गये।

"देखते हैं न! कुत्ते के बिकने की बात दूर! सब कोई आप को पागल समझते हैं!" रामभरोसे ने उत्साह में आकर ठोक दिया।

"जल्दबाजी न करो। मैं अपने कुत्ते को एक हज़ार रुपये में बेच दूँगा।" यह कहकर भैरव सिंह गली के नुक्कड़ पर पिंजड़ों में तोते रखकर बेचने वाले के समीप पहुँचा।

"अरे, वाह! मेरे कुत्ते जैसे ये तोते भी सचमुच देव जाति के लगते हैं। सुनो भाई, एक तोते का दाम क्या है?" भैरव सिंह ने पूछा।

"चार रुपये!" तोतेवाले ने झट से जवाब दिया।

"अरे, इतना सस्ता! तुम तो कोई भोले भाले मालूम होते हो! मैं हर एक

तोते को पांच सौ रुपये में खरीद लूंगा। बेचने को तैयार हो?" पिंजड़े में से दो तोतों को अपने हाथ में लेते हुए भैरव सिंह ने पूछा।

"क्या बोले? तुम मेरे एक तोते को पांच सौ रुपये में खरीदने जा रहे हो? कहीं तुम्हारा दिमाग खराब तो नहीं हुआ है न?" रामभरोसे ने आश्चर्य में आकर पूछा।

भैरव सिंह ने उसकी बातों पर ध्यान दिये बिना अपने कुत्ते को तोतेवाले को दिखाकर कहा–"इस कुत्ते का दाम एक हज़ार रुपये हैं। रुपयों के बदले तुम इस कुत्ते को ले लो।"

तोतेवाले ने सोचा कि दोनों तोतों को बेचने पर सात-आठ रुपये से ज़्यादा हाथ न लगेगा, पर इस कुत्ते को बेचने पर इससे तो जरूर ज्यादा रुपये मिल सकते हैं, यों सोचकर तोते बेचने वाले ने चुपचाप तोतों के बदले में कुत्ता ले लिया। इसके बाद भैरव सिंह ने रामभरोसे की ओर मुड़कर कहा–"देखते हो न! तुम्हारी आँखों के सामने एक हज़ार रुपये में मैंने अपना कुत्ता बेचा! दाँव के सौ रुपये दे दो।"

रामभरोसे का दिल बैठ गया। उसने चुपचाप भैरव सिंह के हाथ में सौ रुपये रख दिये। भैरव ने उन तोतों को समीप के पेड़ों पर छोड़ दिया, तब रामभरोसे से बोला–"अब समझ गये हो न! जिस चीज़ को मैं बेचना नहीं चाहता था, उसके पाने के लोभ में पड़कर तुमने कैसे नुक़सान उठाया है? यह सबक़ सिर्फ़ सौ रुपये का। यह सोचकर तुम इस बात को भूल जाओगे तो दूसरी बार तुम्हें हज़ार रुपये खोने का खतरा पैदा हो सकता है!"

इसके बाद रामभरोसे सर झुकाकर अपने रास्ते चला गया, तब भैरव सिंह तोतेवाले के हाथ में दस रुपये रखकर बाक़ी नब्बे रुपये के फ़ायदा के साथ अपने रास्ते चला गया।

जो भूत देवता बने!

शोलापुर गांव के छोर पर एक बरगद पर बहुत सारे भूत निवास करते थे। एक दिन एक नया भूत उस पेड़ के पास आ पहुँचा।

"यह पेड़ भर गया है! तुम किसी और पेड़ का सहारा ले लो।" बरगद पर रहने वाले बड़े भूत ने नये भूत को डांट दिया।

"मैं कहाँ जाऊं? नजदीक में कहीं कोई बरगद दिखाई नहीं देता।" यों कहते नये भूत ने रोनी सूरत बनाई।

"तब तो मनुष्यों के बीच जाकर क्यों नहीं बसते?" एक भूत ने सलाह दी।

"मनुष्यों के साथ जूझना महान कठिन है; अगर उन्हें शंका हो जाय कि घर में भूत घुस आया है, तो वे झट ओझा को बुलवा देते हैं। वे मांत्रिक इतने सताते हैं कि उनसे तंग आकर मैं यों भाग आया। बरगद की हवा को छोड़ दूसरी आब-हवा मेरे अनुकूल नहीं पड़ती।" नये भूत ने समझाया।

उस पेड पर उपकार बुद्धिवाला एक भूत था। वह नये भूत पर रहम खाकर बोला—"अच्छी बात है, तुम थोड़े दिन के लिए इस पेड़ पर रह जाओ! मैं मनुष्यों के बीच चला जाता हूँ।" यों कहकर वह उड़ते हुए जाकर किसी गाँव के एक घर में घुस पड़ा।

उस मकान का मालिक श्यामनंदन था। उसके दो बेटे थे। दोनों की शादियां हो चुकी थीं। बहुएँ भी घर आ गई थीं। बड़े बेटे के तीन साल का एक लड़का भी था।

भूत को उस घर में कोई तक़लीफ़ महसूस न हुई। वह सबकी आँखों से बचकर जहाँ चाहे वहाँ घूम-फिर सकता

"वसुंधरा"

कि आप जैसी शांत स्वभाव की औरत हमारी सास बन गई हैं!"

"तुम हमारी पड़ोसिन की तुलना भूत से क्यों करती हो? भूत तो उस औरत से कहीं अच्छे होते हैं!" बड़ी बहू बोली।

इस पर सास हँसते हुए बोली—"तुम भूतों को कहीं अच्छे बताती हो! क्या तुम्हें उनकी सही जानकारी भी है?"

"हाँ, इसीलिए तो बताती हूँ! हम यदि भूतों की तारीफ़ करते हैं तो वे हमारे कठिन से कठिन काम कर देते हैं। लेकिन बहुत सारे काम करने पर भी हमारी पड़ोसिन अपनी बहुओं को सताती ही रहती है।" बड़ी बहू ने कहा।

है। बरगद से वह मकान ही उसे सब तरह से सुविधाजनक मालूम हुआ। उस घर के लोग गपशप करते रहते तो, उसे सुनकर भूत भी अपना मनोरंजन कर लेता। श्यामनंदन के पोते की बाल-चेष्टाएँ उसे बड़ी अच्छी लगतीं। इसलिए भूत ने सोचा कि उस घर को छोड़कर बरगद पर नहीं जाना चाहिए।

भूत के लिए एक महीना बड़े ही मजे से कट गया। एक दिन उस घर की तीनों औरतें गपशप कर रही थीं। छोटी बहू सास की तारीफ़ करते बोली—"हमारी पड़ोसी औरत अपनी बहू को भूत की तरह सताती है। हमारी खुश क़िस्मती है

"तुमने भूतों की तारीफ़ की, क्या आज तुम्हारी बारी की दोनों टंकियाँ वे भूत पानी से भर देंगे?" छोटी बहू ने पूछा।

"न मालूम कौन जाने? हमारे जागने के पहले ऐसा हो भी सकता है!" बड़ी बहू बोली।

इसके बाद सब लोग सो गये। भूत यह सारा वार्तालाप सुनता रहा। उसकी तारीफ़ करने वाली बड़ी बहू के प्रति उसके अन्दर आदर का भाव पैदा हुआ। उस औरत के दिल में भूतों के प्रति जो सहानुभूति है उसे सच बनाने का निश्चय

किया। दूसरे दिन बड़ी बहू के जागने के पहले भूत ने टंकियों को पानी से भर दिया।

दूसरे दिन सवेरे बड़ी बहू कुएँ के पास जाकर देखती क्या है, दोनों टंकियाँ पानी से भरी हुई हैं। अचरज में आकर उसने अपनी सास और छोटी बहू को भी बुलाकर पूछा—"क्या आप दोनों ने पानी से ये टंकियाँ भर दी हैं?"

दोनों ने बताया—"नहीं!" छोटी बहू पल भर चुप रही, तब बोली—"रात को हमारी बातचीत सुनकर हमारा मज़ाक़ उड़ाने के लिए शायद ससुरजी ने यह काम किया हो!" लेकिन श्यामनंदन और उसके दो बेटों ने बताया कि वे सवेरे कुएँ तक पहुँचे ही नहीं।

"कहीं किसी भूत का काम तो नहीं यह?" छोटी बहू ने शंका प्रकट की।

"भूतों में ऐसी उपकार की भावना नहीं होती। तमाशा करने के लिए हममें से किसी ने यह काम किया होगा।" यों श्यामनंदन ने सबके चेहरों को परखकर देखा।

श्यामनंदन का बड़ा बेटा इतमीनान से बोला—"अगर सचमुच यह उपकार-बुद्धि वाले भूत का काम हो तो इतनी छोटी-सी मदद से उसे तृप्त नहीं होना चाहिए, हमारी छत पर खपरैल बदलने का काम क्यों नहीं किया? खपरैलों को बदलकर चार साल हो गये हैं! बरसात होने पर घर में जहाँ-तहाँ चू रहा है!"

भूत को इस बात का बड़ा दुख हुआ कि उसकी सेवा भावना की तारीफ़ तक नहीं हुई। इस पर उसने उस रात को छत पर के सारे खपरैल ठीक से बदलकर रख दिया।

भूत बड़ी आशा के साथ इंतजार करता रहा कि सवेरे जागते ही सब लोग उसके काम की तारीफ़ करेंगे, मगर नींद से जागते ही श्यामनंदन चीखकर गिर पड़ा और उसके बेटे घबड़ा कर वैद्य को बुला लाये।

वैद्य ने श्यामनंदन की जांच करके कहा–"इनके पेट में फोड़ा निकल आया है। शस्त्र-चिकित्सा करनी होगी, थोड़ी तकलीफ़ तो जरूर होगी, मगर उसे सहने के लिए नशीली दवा दे देता हूँ।"

इसके बाद वैद्य शस्त्र-चिकित्सा करके नशीली दवा सुंघवा कर चला गया। भूत ने बड़े ही आश्चर्य के साथ इस दृश्य को देखा। वह यह सोचकर निराश हो गया कि श्यामनंदन की तबीयत के सुधरने पर ही उस घर के लोग उसके उपकार की बात समझ जायेंगे। चार दिन बीत गये। जब भी पीड़ा होती, तब श्यामनंदन नशीली दवा लेकर सो जाता। इस गड़बड़ में घर के लोगों में से किसी ने भी छत पर के खपरैलों के बदलने की ओर ध्यान न दिया।

एक दिन अचानक जोर की बरसात हुई, इस पर श्यामनंदन घबराकर खाट पर उठ बैठा और अपने बेटों को समझाया–"बेटे, अनाज के कुठैलों वाले कमरे को सावधानी से देखते रहो! अगर धान भीग गया तो इस साल हमें खाने के लाले पड़ जायेंगे!"

सबने घर के कोने-कोने में जाकर देखा, पर पहले की भांति मकान की छत कहीं चू नहीं रही थी। उन लोगों ने अचरज में आकर यह खबर श्यामनंदन को सुनाई।

"कहीं यह काम किसी भूत का तो नहीं है?" श्यामनंदन ने कहा।

तब जाकर सबको श्यामनंदन के बड़े बेटे ने भूत के बारे में जो बातें कही थीं वे याद आईं। बरसात थमने पर देखते क्या हैं, छत पर के खपरैल करीने से सजाये गये हैं। इस पर दोनों बहुएँ घबड़ा गईं। सास भी सर पर आसमान लेकर चिल्लाने लगी—"इस घर में सचमुच भूत घुस आया है।"

"मैं अभी मांत्रिक मंगाराम को बुलाता हूं।" यह कहते बड़ा बेटा दौड़ पड़ा।

भूत की समझ में न आया कि सारे परिवार का उपकार करने पर भी ये लोग डरते क्यों हैं? यों विचार करते वह भूत फिर बरगद के पास पहुँचा।

एक भूत खीझकर बोला—"छीः, छीः, तुम नहीं जानते क्या? यहाँ पर किसी के लिए अब जगह नहीं है!"

पर उस घर के पुराने भूत को पहचानकर वह बोला—"ओह, तुम्हीं मांत्रिकों से डरकर भाग आये थे न! आखिर वे लोग करते क्या हैं?"

"अगर वे मंत्र पढ़ते हैं तो हमारे बदन में जलन हो जाती है। उस पीड़ा को हम सहन नहीं कर पाते, इसलिए भाग आते हैं!" भूत ने जवाब दिया।

"बस यही बात है!" यों सोचते श्यामनंदन के घर का भूत फिर लौट

गया। वैद्य ने श्यामनंदन को जो नशीली दवा दी थी, थोड़ी-सी निगलकर एक कोने में नींद के मारे ऊंघते बैठ गया।

इसके बाद मांत्रिक मंगाराम आकर थोड़ी देर हंगामा मचाता रहा, कोई मंत्र पढ़ता रहा, पर उसे भूत का पता न चला। फिर भी उसने श्यामनंदन से झूठ-मूठ कह दिया—"मैंने बिजली जैसे मंत्र पढ़े हैं। उन मंत्रों के सामने बड़े से बड़े भूत भी भाग जाते हैं!" यों कहकर मांत्रिक अपना इनाम लेकर चला गया।

"दीदी, क्या सचमुच भूत इस घर को छोड़कर भाग गया है?" छोटी बहू ने बड़ी बहू से पूछा।

"अगर भाग नहीं गया हो तो आज रात को वह इस कमरे का सारा धान कूट कर रख देगा!" बड़ी बहू बोली।

तब तक भूत पर से नशीली दवा का असर जाता रहा। उसके कान में ये बातें पड़ीं, इस पर उसने रातों रात कमरे का सारा धान कूट कर चावल बना दिया।

दूसरे दिन धानवाली कोठरी में चावल देख घर के सभी लोग डर गये। थोड़ी देर बाद बड़ी बहू संभलकर बोली—"इतने सारे अच्छे काम भूत तो नहीं कर सकता। अगर भूत होता तो मांत्रिक मंगाराम के मंत्रों के प्रभाव से भाग गया होता। इस मकान की कोई देवता रक्षा कर रहा है। वह देवता कभी हमारा अपकार नहीं करेगा।"

ये बातें सुनने पर सबके मन में हिम्मत बंध गई।

श्यामनंदन के घर का भूत उत्साह के साथ बरगद के पास पहुँचा। एक भूत ने पूछा—"क्या मांत्रिक मंगाराम ने तुम्हें भगाया है?"

"ऐसी कोई बात नहीं है! तुम सबको मनुष्यों के परिवारों में मजे के साथ जीने का उपाय बताने आया हूँ।" इन शब्दों के साथ श्यामनंदन के घर के भूत ने नशीली दवा की बात सुनाई।

"वाह, बहुत बढ़िया उपाय है! आइंदा हमें इन पेड़ों के आश्रय में लटकते रहने की जरूरत नहीं है!" यों कहते कुछ भूत चिल्लाने लगे। श्यामनंदन के घर का भूत उन्हें शांत करके बोला—"मैं आज तक यही सोचता रहा कि हम बुरे लोग हैं। हम भले ही भूत क्यों न हो, अच्छे काम करने पर मनुष्य हमको देवता मानते हैं! यदि हम मनुष्यों के साथ मजे से जीना चाहते हैं तो हमें उत्तम कार्य करते देवता कहलाना होगा।"

उस दिन से अच्छे काम करने वाले भूत देवता कहलाये और बुरे काम न छोड़ सकने वाले भूतों के रूप में ही रह गये।
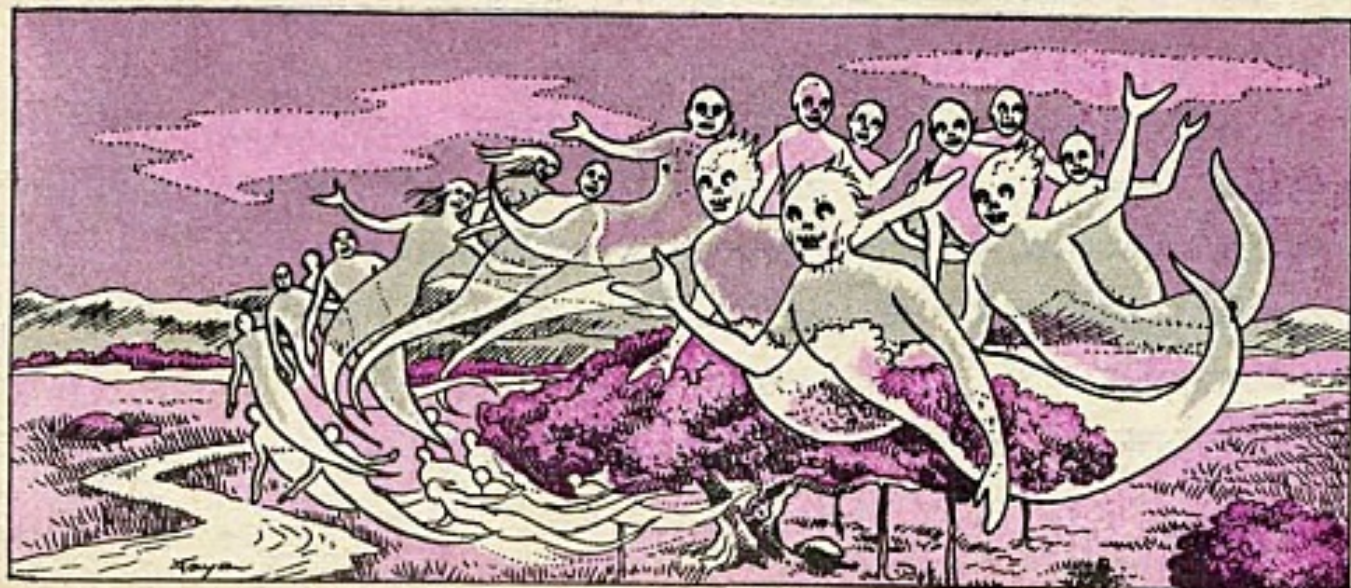
अंतर

चन्द्रपीड़ कांचन नगर के राजा थे। उनके यहाँ धवलमुख नामक एक सेवक था। धवलमुख रोज दरबार से सीधे घर न लौटता था। कहीं खाना खाकर पान चबाते बड़ी रात गये घर लौटता था।

धवलमुख की पत्नी ने एक दिन अपने पति से पूछा—"अजी, सुनिये तो। आप को रोज कौन खाना खिलाते हैं और क्यों खिलाते हैं?"

धवलमुख हंसकर अपनी पत्नी से बोला—"मेरे दो अच्छे दोस्त हैं। उनमें से कल्याण वर्मा एक है। उसके पास जो कुछ है, सो मेरे मांगने की देर है, बस, दे देगा। दूसरा दोस्त वीरबाहू है। वह मेरा दिली दोस्त है। जरूरत पड़ने पर मेरे वास्ते वह अपनी जान तक देने को तैयार हो जाएगा।"

यह समाचार जानकर धवलमुख की पत्नी बड़ी खुश हुई कि उसके पति के ऐसे दिली दोस्त हैं; जो वक़्त पर मदद देने के लिए हमेशा तैयार बैठे रहते हैं। इस पर उसने पूछा—"अजी, आप क्या एक बार अपने दोस्तों को मुझे दिखा सकते हैं?"

"यह कौन बड़ी बात है? कल तुम मेरे साथ चलो। दोनों दोस्तों के घर हो आयेंगे।" धवलमुख ने जवाब दिया।

दूसरे दिन सवेरे पति-पत्नी पहले कल्याणा वर्मा के घर पहुँचे। उसने उन दोनों का अच्छे ढंग से आदर-सत्कार किया।

इसके बाद वे वीरबाहू के घर पहुँचे। उस वक़्त वीर बाहू किसी के साथ शतरंज खेल रहा था। उसने धवलमुख की ओर एक बार नज़र दौड़ाकर कहा—"दोस्त, तुम आ गये? बैठ जाओ।" ये शब्द कहकर वह फिर शतरंज के खेल में निमग्न हो गया।

२५ वर्ष पहले की चन्दामामा की कहानी

थोड़ी देर तक पति-पत्नी बैठे रहे; तब बोले–"अच्छा हम अब चलते हैं।"

वीरबाहू ने अपना सर उठाये बिना कहा–"अच्छी बात है।"

घर लौटते वक़्त धवलमुख की पत्नी ने पूछा–"आपने वीरबाहू को कल्याण वर्मा से भी बढ़कर दिली दोस्त बताया। इससे वर्मा ने ही कहीं ज्यादा हमारा आदर-सत्कार जो किया है? इसका क्या जवाब देते हैं आप?"

"उन दोनों दोस्तों के बीच के अंतर को तुम देखना चाहती हो तो तुम कल दोनों के पास जाओ और उन्हें बताओ कि राजा मुझ पर नाराज़ हो गये हैं!" धवलमुख ने अपनी पत्नी को समझाया।

दूसरे दिन धवलमुख की पत्नी पहले कल्याण वर्मा के घर पहुँची और बोली–"महाशय, मेरे पति पर किसी कारण से राजा नाराज़ हो गये हैं। आप अपने दोस्त की किसी तरह से क्या मदद कर सकते हैं?"

इस पर कल्याण वर्मा घबरा गया और बोला–"बहन, मैं एक व्यापारी हूँ। मैं राजा से दुश्मनी मोलकर क्या कर सकता हूँ? तुम्हारे पति को इस देश को छोड़कर भाग जाना कहीं अच्छा होगा?"

इसके बाद धवलमुख की पत्नी वीरबाहू के घर पहुँची और उससे भी यही बात बताई। यह समाचार सुनते ही वीरबाहू ढ़ाल और तलवार लेकर उस औरत के साथ धवलमुख के घर पहुँचा और आवेश में आकर बोला–"दोस्त, तुम पर राजा से शिकायत करनेवाला वह दुष्ट कौन है? जल्दी बतला दो? मैं अभी उस कम्बख़्त का सर काट डालूँगा।"

इस पर धवलमुख ने हंसते हुए जवाब दिया–"दोस्त, तुम शांति के साथ बैठ जाओ। महा मंत्री ने मीठी बातें बताकर राजा को मेरे प्रति खुश कर दिया है।"

वीरबाहू के चले जाने पर धवलमुख अपनी पत्नी से बोला–"तुमने देखा है न कि मेरे दो दोस्तों के बीच कैसा अंतर है?"

विघ्नेश्वर

पांडवों ने नारद के सुझाव के अनुसार विघ्नेश्वर की अर्चना की। धौम्य को पुरोहित बनाकर गणेशव्रत किया। तब सबने अपने वेष बदलकर विराट राजा के दरबार में अज्ञात वास समाप्त किया।

श्री कृष्ण की मदद से पांडवों ने कौरवों के साथ युद्ध किया और उसमें वे विजयी हुए। हस्तिनापुर में युधिष्ठिर का राज्याभिषेक हुआ, थोड़े समय के बाद उन्होंने अश्वमेध करने का निश्चय किया।

यज्ञ के घोड़े के साथ सेना लेकर अर्जुन चल पड़े। पांडवों के पुरोहित धौम्य भी उनके साथ थे। यज्ञ का घोड़ा कई देशों से होकर निकला। कई राजाओं ने युधिष्ठिर के शासन को स्वीकार करते हुए उनके सामंत होने को मान लिया। घोड़ा चलते-चलते एक प्रदेश में पहुँचा और वहाँ रुक गया। अर्जुन अचरज में आ गये। उन्होंने घोड़े के रुक जाने का कारण पुरोहित धौम्य से पूछा। धौम्य यह संकेत करते आगे बढ़े–'आप चलते जाइये, मैं इसका कारण बताऊँगा।' अर्जुन अपनी सेना के साथ उनके पीछे चले। थोड़ी दूर जाने पर एक महा नगर दिखाई दिया। उस नगर के बीच विघ्नेश्वर की एक विशाल मूर्ति थी। एक पहाड़ी चट्टान को तराशकर वह मूर्ति गढ़ी गई थी। उसकी शिल्प कला देखते ही बनती थी।

धौम्य ने अर्जुन को समझाया–"हे अर्जुन, विघ्नेश्वर की पूजा-अर्चना कीजिए। इसके

१५. वातापि गणपति

"अर्जुन, यही वातापि नगर है। नगर के बीच विघ्नेश्वर की जो मूर्ति है, वह अगत्स्य महामुनि के द्वारा स्थापित अद्‌भुत प्रतिमा है। यह वातापि गणपति के तीर्थ के रूप में पुकारा जाता है। उसकी विशेषता सुनाता हूँ। सुनिये। इन शब्दों के साथ धौम्य उस नगर का वृत्तांत सुनाने लगे:

गंगानदी कवेर नामक राजर्षि के कमण्डलु में गिरकर कावेरी का रूप धरकर उनकी पुत्री के रूप में आश्रम में बढ़ने लगी। अगस्त्य ने उस कन्या को देख उसके साथ विवाह करने की इच्छा प्रकट की।

कवेर ने अपनी सम्मति प्रकट करते हुए कहा–"अगत्स्य, कावेरी की इच्छा भी जान लेना उचित होगा न?"

अगत्स्य मुनि उस आश्रम में कावेरी के साथ स्नेहपूर्वक रहने लगे। एक दिन कावेरी ने अगस्त्य के सामने अपनी इच्छा प्रकट की कि वह सह्य पर्वत पर विहार करना चाहती है। इस पर अगत्स्य कावेरी को सह्याद्रि पर ले गये।

वहाँ पर वन विहार करते समय एक छोटे तालाब में कमल को देख कावेरी मुग्ध हो उठी और उस तालाब में पहुँची। इस पर पानी के हिलारों के स्पर्श से वह अचानक जल के रूप में बदल गई और सह्य पर्वत की चोटियों पर से झरते हुए

बाद में आपको वातापि गणपति के रूप में प्रसिद्ध इस देवता के बारे में वातापि नगर की कहानी विस्तार पूर्वक सुनाऊँगा।"

अर्जुन ने वातापि गणपति की भक्ति पूर्वक आराधना की, तब धौम्य वातापि नगर की ओर चल पड़े। उनके पीछे चलकर अर्जुन ने उस नगर को देखा। किसी जमाने में उस नगर का जो वैभव था, वह अब भी थोड़ा-बहुत बच रहा था। मगर उस वक़्त नगर की अच्छी देखभाल न होने की वजह से उजड़ा हुआ था। जो लोग वहाँ पर बसे थे, वे अर्जुन के आगमन पर खुश हुए और उनसे निवेदन किया कि वहाँ पर शासन का उचित प्रबंध करके उस नगर का पुनरुद्धार करें।

कावेरी नदी के रूप में तेजी के साथ बह चली।

इसके बाद अगत्स्य मुनि कावेरी की याद करते बहुत समय तक ब्रह्मचारी ही रह गये। फिर बड़ी तपस्या करके वे एक महा ऋषि कहलाये। एक दिन उन्होंने जंगल में एक पेड़ की डाल पर औंधे मुँह लटकने वाले पितृदेवताओं को देख पूछा—"आप लोग कौन हैं? आप की इस हालत का कारण क्या है?"

इसके जवाब में वे बोले—"हमारे वंश में पैदा हुए अगत्स्य जब तक गृहस्थ बनकर संतान पैदा नहीं करेंगे, तब तक हमें इसी हालत में रहना पड़ेगा।"

यह जवाब पाकर अगत्स्य महर्षि ने अपनी दिव्य दृष्टि के द्वारा जान लिया कि विदर्भ राजा के यहाँ कावेरी के अंश से एक कन्या पैदा होकर लोपामुदा नाम से बड़ी हो गई है। इसपर उन्होंने विदर्भ राजा के यहाँ जाकर पूछा कि लोपामुद्रा का उनके साथ विवाह करे।

विदर्भ राजा यह सोचते संकोच में पड़ गये कि कंद, मूल व फल खाते हुए जंगलों में भटकने वाले मुनि के साथ कोमल स्वभाव वाली राजकुमारी का विवाह कैसे करें? यदि न करे तो शायद वे शाप दे बैठे। उसी वक़्त लोपामुद्रा ने राजा का संदेह दूर करते हुए कहा—"पिताजी, आप बिना चिंता के अगस्त्य महामुनि के साथ तुरंत मेरा विवाह कर दीजिए।"

विदर्भ राजा ने लोपामुद्रा का विवाह अगत्स्य महर्षि के साथ करके उनके साथ भेज दिया। आश्रम में पहुँचने पर एक दिन अगत्स्य महर्षि ने लोपामुद्रा से बताया—"मैंने अपने पितृदेवताओं को पुन्नाम नरक से तराने के वास्ते संतान पाने के ख्याल से तुमसे विवाह किया है।"

इस पर लोपामुद्रा ने अपनी मैली साड़ी को देख दुखी होकर कहा—"आपने मेरे साथ विवाह किया, इससे आप की जिम्मेदारी पूरी नहीं होती। मैं एक

ज्यादा धन कमाने का कोई उपाय बताने की कृपा करें।

इस पर अगत्स्य निराश हो गये। जब वे एक जंगल के रास्ते से होकर चल रहे थे, तब उन्हें लंबोदर विघ्नेश्वर की प्रतिमा जैसी कोई शिला दीख पड़ी। उस महाशिला को ही विघ्नेश्वर मानकर अगस्त्य ने भक्ति पूर्वक प्रणाम किया और उनसे प्रार्थना की—"गणपति देव! मैं तपस्या को छोड़ दूसरी चीज की चिंता नहीं करता। धन कमाने की कोई विद्या मैं नहीं जानता। ऐसी हालत में मुझे धन कैसे हाथ लग सकता है? आप कृपया मुझे कोई रास्ता दिखाइये।"

इस पर विघ्नेश्वर ने दर्शन देकर पूछा—"महर्षि! आप तो एक शिला के साथ बात कर रहे हैं!"

अगत्स्य ने प्रणाम करके अपनी समस्या बताई। विघ्नेश्वर प्रसन्न होकर बोले—"महामुनि, आप उचित स्थान पर ही पहुँच गये हैं। थोड़ी देर में आप को इल्वल नामक व्यक्ति भोजन के लिए निमंत्रण देंगे। आप वहाँ पर जाइये। उनके पास ढेर-सारी संपत्ति पड़ी हुई है। आपके द्वारा एक कार्य भी संपन्न होना है।"

"गणपति देव! इस महाशिला में मुझे आपकी आकृति दिखाई दी। इसलिए

राजकुमारी के रूप में पैदा होकर पली और बढ़ी। उसके अनुरूप उत्तम वस्त्र और आभूषण ला देना आपका कर्तव्य है। इसके लिए आवश्यक धन कमा लाना भी आप की जिम्मेदारी है।"

अगत्स्य ने अपनी पत्नी की बातों की सचाई समझ ली और वे धन संपादन करने के लिए चल पड़े। उन्होंने कई राजाओं के पास जाकर पूछा कि राज्य शासन का खर्च करने के बाद जो धन बच जाता है, वह मुझे दे दे। पर सभी राजाओं ने यही बताया कि शासन का खर्च के लिए उनके यहाँ का धन बराबर नहीं होता है, उलटे कम ही पड़ रहा है, इसलिए उन्हें भी

मेरी इच्छा की पूर्ति कीजिए। यह शिला अपूर्व गणपति की प्रतिमा के रूप में बदल जाय!" अगत्स्य ने निवेदन किया।

इसपर विघ्नेश्वर यह कहकर अदृश्य हुए–"आपकी इच्छा की पूर्ति हो जाय।"

अगत्स्य थके-मांदे थे। उन्हें बड़ी भूख लगी थी। थकावट के मारे शिथिल हो उस शिला से सटकर वे बैठ गये। तभी उन्हें अतिथियों को साथ लेकर चले आने वाले इल्वल दिखाई दिये; तब अगत्स्य की समझ में सारी बात आ गई।

उस जंगल में वातापि और इल्वल नामक दो बड़े मायावी राक्षस थे। वे मुनियों और मुसाफ़िरों को मारकर धन लूट लेते, उसे एक पत्थरवाले किले में जमा कर देते, थे। इल्वल बड़े ही धर्मात्मा राजा के वेष में लोगों को आतिथ्य देने के बहाने बुला ले जाता, उनका आदर करता, उनसे कुशल प्रश्न पूछते वक़्त वातापि एक मोटे-ताजे बकरे के रूप में बदल जाता। इल्वल उस बकरे को मारकर उसका मांस अतिथियों को खिला देता।

अतिथि जब भर पेट खाकर आराम करने लगते, तब इल्वल जोर से पुकार उठता "वातापि!" इस पर वातापि अतिथियों के पेट चीरकर बाहर निकल आता। उन दुष्टों के इस कार्य पर अगत्स्य को बड़ा क्रोध आया।

इल्वल ने अगत्स्य को देखते ही अपने मन में सोचा कि यह कोई बहुत बड़ा ऋषि मालूम होता है। ऐसे लोगों को जितनी तादाद में मार डाले, उतना अच्छा है। यों सोचते उसने अगत्स्य के पास जाकर उन्हें भोजन के लिए निमंत्रण दिया।

अगत्स्य ने भूख से तड़पने वाले जैसे अभिनय करते कहा–"हे धर्मात्मा, आपके जैसे लोग इस पृथ्वी पर हैं, इसीलिए यह भूमण्डल अनंत आकाश में लटकते स्थिर रह गया है!" यों कहकर इल्वल के साथ वे पत्थर के किले में पहुँचे। तब वे इल्वल से बोले–"हे अन्नदाता, मैं कई

दिनों से भूखा हूँ। मुझसे सहन नहीं किया जाता। मैंने एक हज़ार यज्ञ करवाये हैं। इस कारण बकरे के माँस को छोड़ दूसरे किसी तरह के माँस को मैं हजम नहीं कर पाता। इस बीमारी से मैं परेशान हूँ। इसलिए सब से पहले मुझे बकरे के माँस के साथ भोजन खिलाकर भिजवा दीजिए।"

इल्वल खुश होते हुए बोला—"ऋषिवर! शायद आप ही के वास्ते मेरे घर में बहुत दिनों से एक बकरा पलता आ रहा है। उसके अन्दर चर्बी बढ़ चली है।" यों कहकर बकरे के रूप में स्थित वातापि को मरवा डाला।

अगत्स्य ने बकरे को देख कहा—"वाह, वाह! यह कैसा बकरा है! मैंने एक हज़ार यज्ञ तो कराये हैं, लेकिन ऐसे बकरे के माँस का मैंने स्वाद आज तक नहीं चखा है। महाशय, सब से पहले इसका कलेजा और बढ़िया माँस मुझे खिलाये और बाद को बाक़ी अतिथियों को खिलाइये। मैं पहले ही आप को बता रहा हूँ कि मैं माँस को छोड़ कुछ और चीजें नहीं खाऊँगा। मैं जितना खा सकता हूँ, उतना मुझे खिलाना होगा। यह बात भूलियेगा नहीं।"

इसके बाद इल्वल ने बकरे का माँस आग में भूनकर अगत्स्य को परोसा। इल्वल ज्यों-ज्यों माँस परोसता गया, त्यों-त्यों मुनि खाते गये। पूरे बकरे को खाने के बाद अगत्स्य ने डकार लिया।

इल्वल ने आश्चर्य के साथ डरते हुए अगत्स्य से पूछा—"स्वामी, आप तो बड़े ही घनापाठी जैसे लगते हैं!"

अगत्स्य ने मुस्कुरा कर कहा—"अजी, तीनों लोक जानते हैं कि घनापाठियों में मैं महा घनापाठी हूँ। थोड़ा मद्य भी मंगवा दीजिए। बस, एक मटके भर काफी है!"

इल्वल आश्चर्य चकित हो बोला—"महात्मा, क्या आप मद्यपान भी करते हैं?"

"मेरे पेट में समुद्र भी समा जाते हैं!" अगत्स्य बोले।

"अच्छी बात है! आप ऐसे ही पी लीजियेगा, हमारा वातापि अभी मंगवा देगा।" यों कहते इल्वल ने पुकारा— "वातापि!"

अगत्स्य धीमी आवाज़ में बोले—"अब वातापि कहाँ रहा? वातापि अब लौटकर नहीं आयेगा। जीर्णं, जीर्णं, वातापि जीर्णं।" कहते महामुनि पेट सहलाते बोले—"वातापि तो कभी का हजम हो चुका है।"

इस पर इल्वल जान के डर से काँपते हुए वहाँ से भाग खड़ा हुआ। इस प्रकार वातापि और इल्वल का भयंकर हत्याकांड वाला माया नाटक समाप्त हो गया।

इसके बाद अगत्स्य ने सारा वृत्तांत बाक़ी अतिथियों को सुनाकर पत्थरों वाले क़िले में पड़े हुए ढेरों कंकालों और कपालों को उन्हें दिखाया। वे सब उसे देख छाती पीटते अपनी जान बचाने के उपलक्ष्य में अगत्स्य महामुनि के पैरों पर गिर पड़े।

अगत्स्य ने उस क़िले में धन के ढेरों को देखा। उन्होंने अपने लिए आवश्यक धन लेकर सोचा कि बचे हुए धन के साथ एक महा नगर का निर्माण कराया जा सकता है और उस धन से हज़ारों लोग सुख पूर्वक अपना जीवन बिता सकते हैं।

फिर क्या था, दूसरे ही क्षण अगत्स्य ने सब लोगों में धन बांटना शुरू किया। समीप के राज्यों से कई लोग वहाँ पर आ पहुँचे और अगत्स्य के द्वारा प्राप्त धन से घर बनाकर वहाँ के स्थिर निवासी बन गये।

अगत्स्य को विघ्नेश्वर की अकृति में जो महाशिला दिखाई दी, उसके चारों तरफ़ एक महा नगर बस गया। वातापि जीर्ण के साथ निर्मित वह नगर 'वातापि नगर' नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसके बाद अगत्स्य ने शासन के सूत्रों को शिलालेखों पर खुदवाकर नगर में रखवाया। इस तरह जनता ही शासक बने और वह एक आदर्शपूर्ण जनता के राज्य के रूप में स्थापित हुआ।

गंधर्व राजकुमारी

[६]

रानी जुबेदा की आज्ञा पाकर मन्सूर हसन के घर पहुंचा और दर्वाजा खट-खटाया। हसन की माँ ने किवाड़ खोलकर मन्सूर को देखा और पूछा–"तुम कौन हो? किसलिए आये हो?"

"मेरा नाम मन्सूर है। मैं खलीफा का अंग रक्षक हूँ। महारानी ने इस मकान में रहने वाली युवती को बुला लाने का मुझे हुक्म दिया है।" मन्सूर ने जवाब दिया।

हसन की माँ डर के मारे कांप उठी, बोली "बेटा मन्सूर। हम लोग इस शहर के लिए नये हैं। मेरा बेटा इस शहर से बाहर गया है। जाते वक़्त अपनी औरत को यह हिदायत दे गया है कि वह मकान की देहली पार करके कहीं न जावे। मेरी बहू के बाहर जाने पर उसे कोई न कोई मुसीबत होगी। अगर बहू के लिए कुछ हुआ तो मेरा बेटा ज़िंदा नहीं रह सकता। ऐसी हालत में मैं क्या करूँ?"

"माँ, तुम्हें डरने की कोई जरूरत नहीं है। हमारी रानी ने तुम्हारी बहू की खूबसूरती की खबर सुनी। इसलिए उसे देखने के ख्याल से मुझे बुला लाने भेजा है। मैं तुम्हारी बहू की कोई हानि होने न दूंगा। मैं इसको बड़ी हिफ़ाजत के साथ फ़िर यहीं छोड़ जाऊंगा।" मन्सूर ने समझाया।

हसन की माँ ने भांप लिया कि बहू को रानी के यहाँ ले जाना पड़ेगा। उसने अन्दर जाकर बहू और पोतों को बढ़िया पोशाक पहनवा दी। इसके बाद उनके साथ वह भी मन्सूर के पीछे खलीफा के महल की ओर चल पड़ी।

अरब की कहानियाँ

दासियाँ अचरज में आकर अपनी सांस रोके आपस में गुनगुनाने लगीं–"ओह! यह कैसी खूबसूरत है।"

रानी जुबेदा अपने आप को भूल गई। सिंहासन से उठकर चली आई और हसन की बीबी के साथ आलिंगन किया। इसके बाद उसे अपने साथ सिंहासन पर बिठला कर अपने गले के दस लड़ियों वाले मोतियों के हार को उसके कंठ में पहना दिया। खलीफा के साथ जब जुबेदा की शादी हुई थी, तब से वह हार जुबेदा के कंठ की शोभा बढ़ा रहा था। वह अब हसन की बीबी का उपहार बन गया।

खलीफा के महल में पहुँचने पर हसन की माँ ने देखा कि रानी जुबेदा सिंहासन पर बैठी हुई है। उसके चारों तरफ़ कई दासियाँ घेरी हुई हैं। उन में तूफा भी थी। जुबेदा हसन की पत्नी से बोली–"आओ, यहाँ पर कोई मर्द नहीं है। तुम अपना घूंघट खोल सकती हो।" ये शब्द कहते रानी ने तूफा की ओर देखा। तूफा ने आगे बढ़कर बड़ी भक्ति के साथ हसन की पत्नी के घूंघट को हटाया। फिर क्या था, दूसरे ही क्षण गंधर्व चक्रवर्ती की बेटी का चेहरा इस तरह दमक उठा, जैसे काले बादलों की ओट से प्रकट होनेवाला पूर्णिमा का चांद हो। इस पर जुबेदा की

इसके बाद रानी ने पूछा–"सुनो हे जवान औरत, तुम नाचना और गाना जानती हो? तुम जैसी युवतियाँ तो ये दोनों कलाएँ ज़रूर जानती होंगी।"

"अकसर लड़कियाँ जो नाच-गान जैसी विद्याएं जानती हैं, वैसी मैं नहीं जानती। लेकिन आप को अचरज में डालने वाली एक विद्या मैं जानती हूँ। वह यह कि मैं पक्षी की तरह उड़ सकती हूँ।" हसन की बीबी ने जवाब दिया।

"अद्भुत है! आश्चर्य है!" दासियाँ एक साथ बोल उठीं।

"बिना पंखों के तुम कैसे उड़ सकती हो? उसे देखने की मेरी इच्छा हो रही है।

क्या तुम एक बार उड़कर दिखा सकती हो?" जुबेदा ने पूछा।

"पंख क्यों नहीं हैं? मेरे पास पक्षी का खोल है। मेरी सास को भेजकर आप उसे मँगवा सकती हैं।" हसन की बीबी ने कहा। इस पर जुबेदा बोली–"माई, आप जाकर पक्षी का वह खोल ले आ सकती हैं? आप की बहू के उड़ते देख मैं अपना मनोरंजन करना चाहती हूँ।"

जुबेदा की इच्छा जानकर हसन की माँ का कलेजा कांप उठा। उसने सोचा कि अब उसे सिर्फ़ अल्लाह ही बचा सकता है, फिर प्रकट रूप में बोली–"कोई मनुष्य कहीं पक्षी का खोल पहन सकते हैं? महारानी के सामने मेरी बहू पागलपन की बातें कर रही है। बस, उसकी बातों में कोई सचाई नहीं है।"

मगर हसन की बीबी अपनी सास की बातों को काटते हुए बोली–"मैं जिस पक्षी के खोल की बात बताती हूँ, वह हमारे घर में कहीं सुरक्षित रखा हुआ है।"

इस पर रानी जुबेदा अपने अमूल्य कंगण बूढ़ी के हाथ देकर बोली–"माई, तुम्हें मेरी क़सम! तुम्हें पक्षी का वह खोल जरूर लाना होगा! सिर्फ़ थोड़ी देर अपना मनोरंजन करने के बाद पक्षी का वह खोल फिर लौटाया जाएगा।" लेकिन हसन

की माँ जब बार बार पक्षी के खोल की खबर देने से इनकार करने लगी, तब रानी को बड़ा क्रोध आया, उसने मन्सूर को बुलाकर आदेश दिया–"तुम हसन के घर की तलाशी लेकर पक्षी की खोल ले आओ।" इसके बाद बूढ़ी के हाथ से मकान की चाभी दिलाई।

मन्सूर सारे मकान की तलाशी लेकर पक्षी का खोल उठ ले आया और रानी को सौंपा। जुबेदा ने थोड़ी देर उसे परख कर देखा। उसकी कारीगरी पर मुग्ध हो उसे हसन की बीबी के हाथ दे दिया। उसने खोल ले हर एक पर को जांच कर देखा, उसे सुरक्षित देख बहुत ख़ुश हुई,

तब उसे पहन लिया। फिर ऊपर उड़ते महल के एक छोर से दूसरे छोर तक उड़कर चली आई और फिर फ़र्श पर आ बैठी। तब अपने दोनों बेटों को दोनों कंधों पर बिठा कर एक ऊँचे गवाक्ष पर जा बैठी और बोली–"अब मैं चली जा रही हूँ। मुझे आज्ञा दीजिए।" हसन की माँ दहाड़े मारते रोने लगी। उसकी बहू बूढ़ी से बोली–"सासजी, मैं आप को और आपके बेटे को छोड़ चली जा रही हूँ। आप लोगों को छोड़ते मुझे बड़ा दुख हो रहा है। लेकिन मैं क्या करूँ? उड़ने में जो नशा है, उसने मुझे घेर लिया है। अगर आप के पुत्र मेरी खोज करना चाहे तो वाक्-वाक् द्वीपों में मुझे ढूंढ सकते हैं। अब मुझे विदा कीजिए।" यों कहते गवाक्ष से होकर वह अपने बच्चो के साथ आसमान में उड़कर चली गई। बेहोश पड़ी हसन की माँ को अपने हाथ से थपकी देकर जुबेदा ने जगाया, तब कहा–"माई, तुमने पहले ऐसा स्वांग रचा मानो इसके बारे में कुछ जानती ही न हो, पहले ही असली बात बता दी होती तो यह हालत न होती और मैं उसे रोक देती। नासमझी के कारण मैंने जो गलती की, इसे माफ़ कर दो।"

"महारानी जी, सारी गलती मेरी है। मेरी क़िस्मत में लिखा था कि मुझे और मेरे बेटे को इस तरह दुख में घुलना होगा।" यों कहते हसन की माँ अपने पैर घसीटते घर की ओर चल पड़ी। उसने इस विचार से सारा घर छान डाला कि कहीं उसकी बहू और पोते दिखाई दे। मगर वे क्यों कर दीखे? इसके बाद उसने अपने-अपने घर में एक बड़ा मखबरा और दो छोटे मखबरे बनवाये, उनके पास बैठकर दिन-रात रोती रही।

उधर हसन ने सात राजकुमारियों के साथ तीन महीने बिताये, फिर अपनी बीबी व माँ की याद करके अपनी "दीदियों" से विदा ली, डफली बजाकर ऊँटों को मंगवाया, राजकुमारियों से प्राप्त

सोना, चाँदी, और हीरे-जवाहरात लादकर जल्द ही बगदाद को लौट आया ।

घर लौटने के बाद हसन ने अपनी माँ से पूछा–"माँ, मेरी पत्नी और बच्चे कहाँ हैं?" इस सवाल के जवाब में उसकी माँ जोर से रो पड़ी । हसन को लगा कि वह पागल होता जा रहा है । उसने सारा घर ढूँढा, अपनी बीवी का पक्षीवाला खोल जिस बक्से में छिपा रखा था, वह खाली पड़ा दिखाई दिया, साथ ही उसे तीन नये मखबरे दिखाई दिये । उन्हें देखते ही वह चीखकर नीचे गिर पड़ा ।

माँ ने हसन की बड़ी सेवा-शुश्रूषा की, फिर भी रात तक उसे होश न आया । होश में आने पर हसन ने अपने कपड़े फाड़ लिये । अपने सर पर धूल और राख डालने लगा । छुरी से भोंककर अपनी हत्या करने की कोशिश की, लेकिन उसकी माँ ने उसे रोक लिया । उसने हसन को सारा समाचार सुनाकर कहा–"बेटा, तुम्हें बिलकुल निराश होने की जरूरत नहीं है । तुम अगर वाक्-वाक् द्वीपों में जाओगे तो तुम्हारी बीबी दिखाई दे सकती है ।"

यह खबर सुनते ही हसन को लगा कि उसकी जान में जान आ गई है । वह झट उठ खड़ा हुआ, और बोला–"माँ, मैं अभी वाक्-वाक् द्वीपों के लिए रवाना हो जाता हूँ ।"

लेकिन पक्षी के कूजन जैसे नाम वाले ये द्वीप कहाँ होंगे? वह जानता न था कि उन द्वीपों की खोज में उसे हिन्दुस्तान में जाना है? फारस देश में जाना है या चीन में?

वह सीधे खलीफा के दरबार में गया, वहाँ पंडितों से पूछा कि वाक्-वाक् द्वीप किस समुद्र में हैं? लेकिन एक ने भी उसे सही पता नहीं दिया । किसीने भी उन द्वीपों का नाम तक नहीं सुना था । इससे हसन की आशा भी जाती रही । इस पर वह यह सोचते कि "अब मैं सीधे पितृ लोक में ही जाऊँगा" घर पहुँचा और चुपचाप लेट गया । (और है ।)
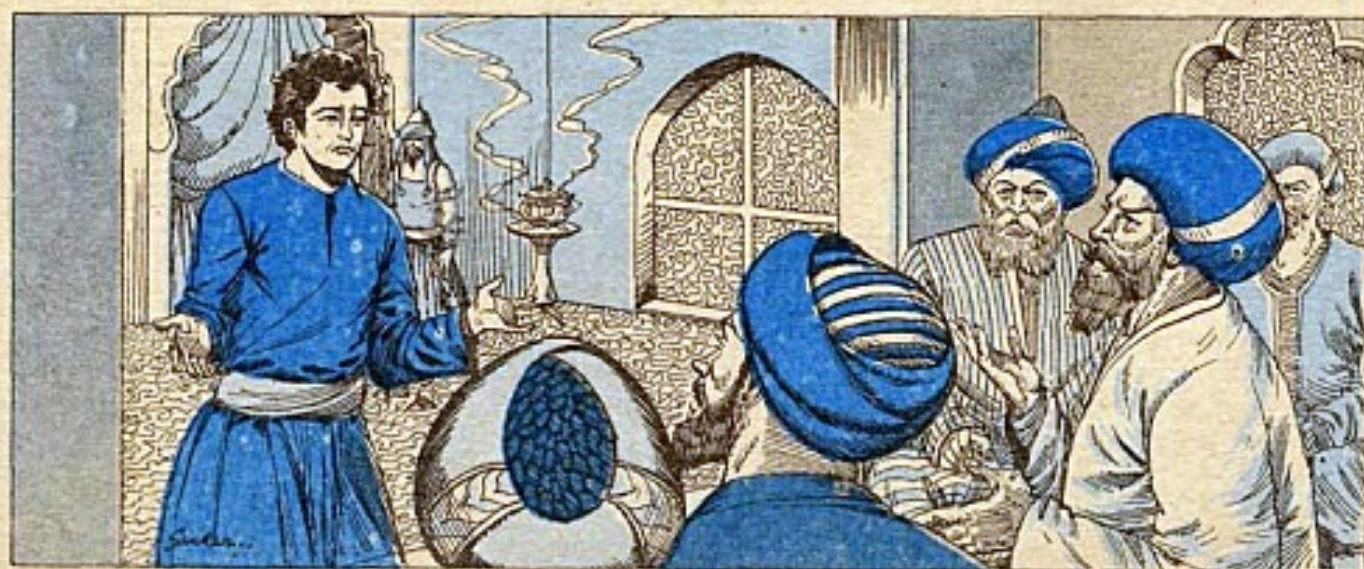
फोटो-परिचयोक्ति-प्रतियोगिता :: पुरस्कार २५)

पुरस्कृत परिचयोक्तियाँ जून १९८२ के अंक में प्रकाशित की जायेंगी।

Gopal Shroti

★

Prabu Sankar

★ उपर्युक्त फोटो की सही परिचयोक्तियाँ दो-तीन शब्दों की हों और परस्पर संबंधित हों।

★ अप्रैल १० तक परिचयोक्तियाँ प्राप्त होनी चाहिए, उसके बाद प्राप्त होनेवाली परिचयोक्तियों पर विचार नहीं किया जाएगा।

★ अत्युत्तम परिचयोक्ति को (दोनों परिचयोक्तियों को मिलाकर) २५ रु. का पुरस्कार दिया जाएगा।

★ दोनों परिचयोक्तियाँ कार्ड पर लिखकर (परिचयोक्तियों से भिन्न बातें उसमें न लिखें) निम्नलिखित पते पर भेजें : **चन्दामामा फोटो-परिचयोक्ति-प्रतियोगिता, मद्रास-२६**

फरवरी के फोटो-परिणाम

प्रथम फोटो : **देख रही हूँ खड़ी-खड़ी!**

द्वितीय फोटो : **मैं भी करतबबाज बड़ी!!**

प्रेषक : **नौनिहाल**, ग. नं. १, निकट पुलिस थाना, सदर बाजार, मेरठ - २५०००१.

पुरस्कार की राशि रु. २५ इस महीने के अंत तक भेजी जाएगी।

Printed by B. V. REDDI at Prasad Process Private Ltd., and Published by B. VISWANATHA REDDI for CHANDAMAMA CHILDREN'S TRUST FUND (Prop. of Chandamama Publications) 188, Arcot Road, Madras-600 026 (India). Controlling Editor: NAGI REDDI.

Nothing is more divine
and sacred than the
institution of
Marriage and
Motherhood-
only pride and lack
of understanding
can miss them
both.
श्रीमान
श्रीमती
बी. नागी रेड्डी
प्रस्तुत करते हैं,
एक नयी महान
फिल्म
Director :VIJAYA REDDY
Story :K. S. RAO
Dialogue :RAJ BALDEV RAJ
Lyrics :MAJROOH SULTANPURI
Music :RAJESH ROSHAN
Camera :
P. L. RAI
Art :
S. KRISHNA RAO
Editing :
K. BALU
Associate Director :
VIJAYAKUMAR RAKHURA
Stills :
R. NAGARAJA RAO
Production Controller :
M. VEERA RAGHAVULU
EASTMANCOLOR by PRASAD/VIJAYA COLOR LAB
RECORDS ON HMV
Frame to Frame a Family Film
विजय प्रॉडक्शन्स - चित्र
65